चौथा अध्याय

संजीव की कहानियों की कथावस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

हिंदी कहानी परंपरा में प्रेमचंद के पूर्ववर्ती कथाकार तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी आदि कहानियाँ किस्सागोई पद्धति में कहकर लोगों के दुःख-दर्द के अवसाद को गलाकर, उनमें हर्ष-उल्लास पैदा कर उनका मनोरंजन करते रहें। सृष्टि के आरंभ से ही कहानी सुनने की सहज मानवीय प्रवृत्ति रही है। परंतु कहानी का अंत होना चाहिए, नायक-नायिका का मिलन होना चाहिए तभी बच्चों को नींद आएगी इत्यादि धारणाएँ अब टूटी हैं। आज कहानी का उद्देश्य **'बच्चों को सुलाना'** नहीं बल्कि **'पूरे समाज को जगाना'** है। अतः यही **'कहानी का समाजशास्त्र'** है। मुंशी प्रेमचंद जी ने सबसे पहले 'किस्सा' को 'कहानी' बनाकर उसमें भारतीय जन-जीनव के सामाजिक सरोकारों को सम्मिलित किया। कहानी के मूलाधार पात्र होते हैं और यही कथ्य के सम्बल होते हैं। इसलिए प्रेमचंद ने सबसे पहले समाज के तथाकथित नीचले तबके से पात्रों को उठाकर सामाजिक समस्याओं को रेखांकित करने का प्रयास किया। कथाकार भी आम मनुष्य की तरह सामाजिक प्राणी होता है और अपने समाज में व्याप्त जटिलता, विविधता एवं क्लिष्टता को रेखांकित करता है। उसका उद्देश्य सस्ता मनोरंजन करना नहीं होता बल्कि समाज को सही मार्ग प्रदर्शित करना होता है। मार्क्सवादियों के अनुसार समाज में शोषक और शोषित दो वर्ग हैं जिसके कारण सामाजिक विसंगतियाँ, असन्तुलन और फासले बढ़ते हैं और इसको आधार बनाकर लिखी गई कहानियों में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रछलित होते हैं। परंतु इससे कहानी का एकपक्षीय होने का खतरा भी बना रहता है अतः उसके कलात्मक पक्ष का भी ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। परंतु समाज से उसका सम्पृक्त होना उसकी सोद्देश्यता की पहली शर्त है।

हिंदी कहानी अपनी परंपरा में अनेक पड़ावों को पार करते हुए समकालीन कहानी के दौर में पहुँचती है। आम तौर पर समकालीन साहित्य के समय को लेकर एक निश्चित धारणा नहीं है, बावजूद इसके 1970 के बाद की परंपरा की कहानियों को समकालीन कहानी के रूप में परिभाषित किया जाता रहा है। समकालीन कहानी के दौर में संजीव, प्रमुख भूमिका में हैं एवं उनकी कहानियों का फलक बहुत विस्तृत है। वे बहुआयामी प्रतिभा के धनी और निरंतर

शोधक कलाकार हैं। वे प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाने वाले एक बेहद संवेदनशील कहानीकार हैं। उनकी कहानियों की संवेदनाएँ मुख्यतः व्यापक भूगोल को भी समेटती हैं –दलित, स्त्री विमर्श, निम्न-मध्यवर्गीय जीवन, मजदूर आंदोलन, नक्सलवाद, कल-कारखाना, गाँव, आदिवासी, सांप्रदायिकता, रूढ़िवादिता और अंधविश्वास इत्यादि सभी उनकी कलम की हद में हैं। वे हमेशा भीड़ से अलग चलने वाले एक बेचैन कहानीकार हैं। **'अपराध'** कहानी से कथा जगत में अपनी पहचान बनाने वाले संजीव **'आरोहण', 'सागर सीमान्त', 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', 'ऑपरेशन जोनाकी', 'पूत-पूत! पूत-पूत!!'** आदि प्रमुख कहानियों के साथ दर्जनों चर्चित कहानियों के रचयिता के रूप में एक अलग स्थान रखते हैं। उनकी कहानियाँ स्वयं के लिए लिखी हुई नहीं अपितु सामाजिक, राजनैतिक सोद्देश्यता तथा सामाजिक-नैतिक वादी आग्रहों से परिचारित है। वे अन्याय बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं। तभी तो अपने पहले कहानी संग्रह 'तीस साल का सफ़रनामा' से ही वे दलित, दमित, प्रताड़ित और अवहेलित जनता के पक्ष में खड़ा होते हैं। आजादी के 30 साल बाद भी जब जनता की स्थिति में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं आ रहा था, ग्राम पंचायतों से लेकर विधानसभा और संसद तक में अपराधियों की ताज पोशी हो रही थी, किसान मजदूर में बदलते जा रहे थे, धनी और धनी होते जा रहे थे, ऐसी स्थिति में लेखक का हृदय नक्सलियों के प्रति संवेदनशील बनता है और **'अपराध'** कहानी का जन्म होता है। **'अपराध'** और **'शिनाख़्त'** में इस आंदोलन के प्रति मध्यवर्गीय पात्रों का झुकाव देखने को मिलता है। **'क़िस्सा एक बीमा कम्पनी की एजेंसी का', 'आहट', 'नकाब'** इत्यादि बाजारवाद से संबंधित तथा **'कुछ तो होना चाहिए न!', 'तुक, ताल, लय, मात्रा और छंद'** समकालीन यथार्थ में काव्य और साहित्य के स्थिति पर लिखी गई कहानियाँ हैं। **'जसी-बहू', 'वापसी', 'प्रेरणास्त्रोत'** आदि स्त्री संवेदना की कथा तथा **'बाढ़', 'माँद', 'सन्तुलन'** आदि मानवीय रिश्तों की पड़ताल करती कहानियाँ हैं। कुछ-कुछ कहानियों के शीर्षक छोटे और सीधे-सरल हैं परंतु कहानियाँ लंबी। कथाकार के पास बोलने के लिए इतना कुछ है कि कहानियाँ लंबी हो गई हैं। परंतु कहानी में उपस्थित कौतूहलता और जिज्ञासु वृत्ति हमेशा पाठक के मन को बांधे रहता है।

तीस साल का सफ़रनामा (कहानी संग्रह)

क़िस्सा एक बीमा कम्पनी की एजेंसी का

प्रस्तुत कहानी संजीव के प्रथम कहानी संग्रह 'तीस साल का सफ़रनामा' का रचनात्मक दृष्टि से प्रथम कहानी है। प्रस्तुत कहानी की रचना 1975 में हुई किंतु प्रकाशन कहानी संग्रह के रूप में 1981 में हुई। आजादी के 30 साल बाद भी देश में जिस प्रकार की बेरोजगारी है, उससे लेखक दुखी है। आजादी के पहले बड़े-बड़े सपने दिखाए गए थे परंतु आजादी के बाद उन सपनों से मोहभंग हो चुका है। गरीब जनता के लिए सिर्फ शासक बदला है, उनकी स्थिति यश-की तश है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत कहानी में बीमा कम्पनी के एजेंट के रूप में नायक का संघर्ष दर्शाया गया है। कहानी व्यंग्यात्मक लहजे को समेटे हुए वैचारिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण है। लेखक सरकार के ऊपर व्यंग्य करता है कि इतनी बड़ी जनसंख्या को वह नौकरी कैसे दे सकता है? पढ़े-लिखे लोगों को अपने रोजगार की सृष्टि स्वयं करनी चाहिए, मसलन बीमा एजेंट बनकर। आज की वर्तमान स्थिति में भी बेरोजगारी के मामले में सरकारी नीति में कोई भी परिवर्तन नहीं आया है। आज भी सरकारें बेकार युवकों को टोटो रिक्शा चलाने को, पकौड़ा बेचने को, आलूचप-मुढ़ी बेचने को कह रही है और उसे रोजगार देने की श्रेणी में गिनती कर रही है। लेखक यह दर्शाता है कि एक शिक्षित बेरोजगार बीमा कम्पनी का एजेंट बनकर किस प्रकार ग्राहक की तलाश में दर-दर भटकता है। मार्केटिंग के कार्य में कितनी प्रतिस्पर्धा है, ग्राहक को पकड़ने के लिए एजेंटों को कितना तिकड़म आजमाना पड़ता है– "तीर्थस्थानों में पण्डों और स्टेशनों पर कुलियों का एक ही व्यक्ति पर हक़ जतलाने और फिर तू-तू मैं-मैं के बाद कम्प्रोमाइज़ को यहाँ एक नया आयाम दिया गया था।"[1] आज भी एल.आई.सी. और अन्य बीमा कम्पनी के एजेंटों से लोग कितना कतराते हैं। जहाँ एक ओर लेखक ने शिक्षित बेरोजगारों की दुर्दशा का मर्मांतक वर्णन किया है वहीं दूसरी ओर उनकी उच्च आकांक्षाओं मसलन कार प्राप्त करने की इच्छाओं पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। स्मरण

---

1. *संजीव, 'क़िस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करणः 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 14*

रहे कि आज का युवा भी भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे ज्यादा भागना चाहता है।

बाग़ी

प्रस्तुत कहानी यह दर्शाती है कि किस प्रकार शिक्षित नवयुवक, राजनेता और पूँजीपतियों के हाथों की कठपुतली बने हुए हैं। किस प्रकार पूँजीपति उन्हें अर्थ का लोभ दिखाकर उनके स्वाभिमानों का गला घोंट रहे हैं। वर्तमान समय में भी जितने प्रतिष्ठित नेता हैं उनके भाषणों के सारे स्क्रीप्ट पढ़े-लिखे नवयुवक ही तैयार करते हैं। राजनेताओं को कब किस जगह पर क्या बोलना है, यह भी हमारा शिक्षित युवा उनके नौकर के रूप में तैयार करता है। अर्थात पूरी प्रतिभा पूँजी की गुलाम बनी हुई है। यद्यपि वह इन राजनेताओं का असली चेहरा भी पहचानता है परंतु वह अपनी निम्न-मध्यवर्गीय स्थिति के कारण इनकी चाकरी करने को विवश है और जब कभी स्वाभिमान सर भी उठाना चाहता है, पूँजी के बोझ तले झुक जाता है।

कहानी का नायक भ्रष्ट मंत्री महोदय के लिए मानपत्र लिखता है –"कैसे फटाफट कह दिया गया, गोया वह राइटर न हुआ, उनका ज़रख़रीद ग़ुलाम हुआ, हुक्म करने भर की देर होगी और वह पूँछ हिलाते हुए उनके तलवे चाटने लगेगा!"[2] एक बार उसके अंदर का स्वाभिमान जागता है, वह दो मानपत्र तैयार करता है – एक असली और एक नकली। अर्थात वह तय करता है कि इस भ्रष्ट नेता का सारा पोल खोल देगा, भले ही उसे फाँसी हो जाये। परंतु अगले ही पल राजनेता आम आदमी से प्लांट उद्घाटन करवाने के लिए नायक को ही चुनता है और नायक राजनेता का भेद खोलने वाला अभियोगपत्र से पर्सनल मैनेजर के कुत्ते की गंदगी उठाकर अपने आप को पूँजीपति के गुलाम के रूप में समर्पित कर देता है। लेखक प्रस्तुत कहानी में यह बताना भी नहीं भूले हैं कि पद और सत्ता का दाम होता है इन्सान का नहीं। जब तक नेता जी सत्तारूढ़ पार्टी के मंत्री रहते हैं उनका जोरदार स्वागत होता है। ज्योंहि चुनाव हारकर आम आदमी बनते हैं जनता भी उन्हें नहीं पूछती है। जैसे नेता आम से खास

---

2. *संजीव, 'बाग़ी', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण: 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 21*

बन जाने पर जनता को नहीं पूछते।

प्रतिद्वन्द्वी

प्रस्तुत कहानी में मुन्ना एक समझौतावादी चरित्र है। वह पूँजीपति व्यवस्था के आगे मजबूर है। उसके अंदर अपने माँ-पिता और बहन के मान-सम्मान और आत्म-सम्मान की रक्षा का साहस नहीं है। वह कहानी के नायक मास्टर से प्रतिस्पर्धा करता है। जबकि दूसरी ओर मास्टर मुन्ना के अपाहिज बहन के अंदर आत्मविश्वास पैदा करता है, उसे मानसिक अवसाद से बाहर निकालता है। इतना ही नहीं उसके माता-पिता के बुढ़ापे का सहारा भी बनता है। अनीता को अपना बहन मानते हुए भाई होने का फर्ज अदा करता है, और एक अधेड़ विधुर से उसके विवाह के प्रस्ताव का विरोध करता है। जबकि अनीता का अपना भाई मुन्ना इसे अपनी विवशता मानकर स्वीकार कर लेता है। खुद बेरोजगार होते हुए भी वह मुन्ना के लिए अपनी नौकरी की कुर्बानी दे देता है। वह नारी का सम्मान करता है जबकि उसकी खुद की माँ-बहन, परिवार नहीं है। पूँजीवादी समाज में गरीब लड़कियाँ अपना अंग प्रदर्शन करने को मजबूर हैं। कार्यालय, स्कूल, अस्पताल या घर कहीं भी वे सुरक्षित नहीं हैं। स्त्री का कामुक विज्ञापन बनाकर एक्टर, डायरेक्टर और पूँजीवादी समाज अर्थ लूटते हैं। मास्टर को इससे सख़्त ऐतराज है तभी तो गर्ल्स स्कूल के प्रदर्शनी में हो रहे लड़कियों के नुमाइश का वह विरोध करता है। "बंद करो लड़कियों की यह नुमाइश!"[3] उसके इस रूप का रस्तोगी जैसे लोग विरोध करते हैं। अर्थात उच्च और स्वच्छ विचार का दमन करना चाहते हैं जो कि आज के समाज का यथार्थ है।

तीस साल का सफ़रनामा

आजादी के पूर्व भारतीय किसानों की अवस्था अत्यंत दयनीय थी। उम्मीद थी कि आजादी के बाद उनकी स्थिति में परिवर्तन होगा। परंतु आजादी के 30 साल बाद भी किसानों

---

3. *संजीव, 'प्रतिद्वन्द्वी', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 31*

की स्थिति जश की तश बनी रही। यहाँ तक कि प्रेमचंद के हल्कू की परंपरा अर्थात किसान से मजदूर बनने की विवशता निरंतर जारी रही। कहानी का नायक सुरजा का जन्म ठीक आजादी के दिन ही हुआ। उस समय उसके पास डेढ़ बीघे की खेती थी जबकि नम्बरदार के पास नौ बीघे की। परंतु आजाद भारत में तानाशाही, सामंती अर्थनीति, जातिवाद और शोषण की जड़ें इतनी मजबूत हैं कि आजादी के इन तीस वर्षों में –"सुरजा किसान से मजूर बन गया है, और नम्बरदार किसान से महाजन।"[4] सुरजा का गाँव कुसुमपुर एक भारतीय ग्राम का प्रतीक है। जहाँ विकास की सारी योजनाएँ सवर्णों के खाते में जाती है। यहाँ तक कि विकास के नाम पर बनने वाली सड़के भी बड़ी जातियों की खेतों को बचाते हुए गरीब तथा निम्न जातियों के जमीनों से होकर गुजरती है। सुरजा जैसे गरीबों के लिए बनी समाज कल्याण की योजनाएँ ताकतवर जातियों की झोलियों में चली जाती है। जमीनों के पट्टा में भी घुसखोरी, दबंगई चलती है। पूरा दिन कड़ी मेहनत करने के बाद भी जब गरीब का पेट नहीं भरता है तो वह विरोध करता है। सुरजा यहाँ एक जाति का प्रतीक हो जाता है, पूरा चमरौटी सवर्ण अत्याचार का विरोध करता है। परंतु बाकि तथाकथित छोटी जातियाँ मसलन अहिरौटी, लोहरौटी, अपनी स्वामी भक्ति सिद्ध करने के लिए सवर्णों के शरणागत होते हैं और जैसा कि आम समाज में होता है कि सुरजा को षड्यंत्र में फँसाकर उसे नक्सलवादी घोषित कर दिया जाता है। उसे जेल होती है। फिर उसे सवर्ण समाज ही छुड़ाता है परंतु अपना गुलाम बनाकर, अपना जूता सूंघाकर रखने के लिए।

इस प्रकार संजीव प्रस्तुत कहानी के माध्यम से यह दर्शाना चाहते हैं कि जाति व्यवस्था, शोषण, गरीबी, भुखमरी का दीमक आज भी भारत की जड़ों को खोखला कर रहा है। देश का सर्वांगिक और समरूप विकास नहीं हो रहा है। भूख पर आज भी हम विजय नहीं पाए हैं। आज भी भूख से मौतें हो रही हैं। सामान्य जनता की बातों को दबाया जा रहा है। जाति व्यवस्था का दंश और गरीबों-अमीरों के बीच की आर्थिक खाई निरंतर चौड़ी होती जा रही है।

---

4. संजीव, 'तीस साल का सफ़रनामा', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 34

संजीव ने समाज व्यवस्था का यथार्थवादी रूप हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है। वे नैतिकता की बात करते हैं, खोखली होती न्याय व्यवस्था को उजागर करते हैं। देश में गरीबी, शोषण, सामंतवादी सोच, अत्याचार और अन्याय के लिए जिम्मेदार लोगों का मुखौटा खोलते हैं।

मरोड़

'मरोड़' कहानी एक प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक के दुख की दास्तान है। मास्टर दीनानाथ को अर्थाभाव के कारण कई ट्यूशन भी लेना पड़ता है। जिन सेठ-महाजनों के बच्चों को वे पढ़ाते हैं वे उच्च-उच्च पदों पर पहुँचते हैं परंतु उनकी स्वयं की संतानें सिर्फ पास होती हैं। अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए वे समय ही नहीं निकाल पाते हैं क्योंकि उन्होंने अपना सारा समय चंदानिया जैसे सेठों के यहाँ गिरवी रख दिया है। घर में पत्नी भी अल्पशिक्षित और बीमार है। वे महसूस करते हैं कि बच्चों में रुचि और संस्कारों की कमी रह गई है। बूढ़ी माँ और मानसिक रूप से विकृत बच्ची की दवा का खर्च सुबह का समय बेचकर ही कमाया जा सकता है। उनके हृदय के अंदर उच्च शिक्षा प्राप्त करके उच्च पदों पर न पहुँच पाने की एक **'मरोड़'** है –"उफ ! कितने हाथ-पाँव मारे, मगर इस ट्यूशन के मकड़ी के जाले से कहाँ निकल पाए।"[5]

फुलवा का पुल

प्रस्तुत कहानी भ्रष्ट अधिकारियों द्वारा सरकारी संपत्ति के गबन को दर्शाती है। भ्रष्टाचारियों का मनोबल इतना ऊँचा है कि जो पुल वास्तव में है ही नहीं, उस पुल के मरम्मत के नाम पर वर्षों से पैसा पास करवाया जाता रहा है। भ्रष्टाचार का यह रूप वर्तमान समाज की कड़वी सच्चाई है। आज सैकड़ों प्रोजेक्ट सिर्फ कागज पर बनकर फाइलों में ही पूरे हो जाते हैं और प्रोजेक्टों का पैसा ठेकेदारों, अधिकारियों से लेते हुए मंत्री महोदय में बँट जाते हैं। हमारे देश में भ्रष्टाचार की एक लंबी परंपरा रही है –टू जी स्पेक्ट्रम, फोर जी स्पेक्ट्रम, चारा घोटाला,

---

5. संजीव, 'मरोड़', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 41

व्यापम घोटला, कॉमनवेल्थ घोटाला इत्यादि। ये भ्रष्ट कर्मचारी किसी भी ईमानदारी अधिकारी को छल-बल-कल से ही सही अपने समूह में शामिल कर लेना चाहते हैं। कहानी में ईमानदार चीफ इंजीनियर विजय भी एक बार फुलवा के पुल के मरम्मत के लिए पैसा पास कर चुका है जबकि दूसरी बार जब वह स्पॉट का निरीक्षण करने पहुँचता है तो वहाँ कोई पुल ही नहीं है। बड़े बाबू उन्हें झूठा रिपोर्ट ऊपर भेजने को कहते हैं परंतु ईमानदार चीफ इंजीनियर सच-सच रिपोर्ट अपने ऊपर के अधिकारियों को भेजता है तो भ्रष्टाचारियों पर कार्यवायी होने के बजाय उसका ही तबादला कर दिया जाता है। प्रस्तुत घटना यह दर्शाती है कि हमारे देश में भ्रष्टाचार की जड़ें कितनी मजबूत हैं। बाढ़ के समय में भ्रष्टाचारियों द्वारा फाइलों में यह दिखला दिया जाता है कि बाढ़ में 'फुलवा का पुल' बह गया। अर्थात वह पुल बह गया जो कभी था ही नहीं।

टीस

टीस कहानी का नायक एक आदिवासी सपेरा है। जो कांकड़डीहा कोलियरी क्षेत्र के आदिवासी टोला में रहता है और जिसके चासा की सारी जमीनें कोलियरी मालिकों के पेट में समा गई है। यद्यपि सपेरा शिबू काका के पिता ने उन्हें साँप का खेल छोड़कर खेती करने की नसीहत दी थी। शिबू काका ने किसान बनने का प्रयत्न भी किया था परंतु शोषणवादी समाज, परिस्थितियाँ और परिवेश ने उन्हें फिर से सपेरा बना दिया। कथावाचक का संबंध शिबू काका से चाचा-भतीजा का भाव लिए हुए है, यद्यपि दोनों समाज के दो धूरी हैं। एक काकड़डीहा कोलियरी के वेल्फेयर अफसर का पुत्र है तो दूसरा साधारण सपेरा। परंतु दोनों में मानवीय संबंध है। एक दिन कथावाचक की माँ शिबू काका को साँप दिखाने को कहती है तो शिबू काका हँसते हुए कथावाचक के माँ को समझाते हैं –"रोड पर जा रहा है एक नम्बर का अजगर मुखिया पिनाकी महतो। जितना सरकारी पैसा और सामान गाँव के लिए मिलता है, सब साला के पेट में जाता। पीछे-पीछे जा रहा 'उसका' लड़की पत्तो। ढेमना (धामिन) है ढेमना। बड़ा-बड़ा बी.डी.ओ., एस.डी.ओ. कोलरी मैनेजर, ठिकेदार का पा (पैर) बांधके दूध पी जाता। कपड़ा और मुदीखाना का दुकान वाला सेठ लोग राजस्थान का पीवणा नाग है।

सूबेदार रामबली राय गंगा के किनारे का चित्ती (करैत) है तो मुनीम जगेशर सिन्हा 'बोड़ा' साँप है।"[6] शिबू काका को अनुभव के आधार पर इस वर्गीय समाज की गहरी समझ है। वह पंड़ित पंचानन भट्टाचार्या की तुलना गोखुरा नाग से करता है। क्योंकि वह उसके चरित्र को पहचान सकता है। शिबू काका यह समझते हैं कि समाज के दो वर्ग हैं एक शोषक का और दूसरा शोषित का। एक विषैले साँपों का तथा दूसरा मेढ़कों का। साँप हमेशा मेढ़कों का शिकार करने में सफल हो जाते हैं। कहानी में हम आगे पाते हैं कि पंचानन भट्टाचार्या और अपनी पत्नी मताई के बीच अनैतिक संबंध को देखकर वे अपनी पत्नी की हत्या कर देते हैं। उन्हें जेल हो जाती है परंतु पुजारी प्रशासनिक अधिकारियों को रिश्वत खिलाकर बच जाता है। कहानी की दो घटनाएँ थोड़ा संशय पैदा करती हैं – पहला कथावाचक का उसी क्षेत्र में डी.एस.पी. बनकर आना और दूसरा कमजोर शिबू काका द्वारा जेल की दीवार फाँदने की कोशिश करना।

अपराध

संजीव के प्रथम कहानी संग्रह **'तीस साल का सफ़रनामा'** की प्रमुख कहानी है **'अपराध'**। यह कहानी नक्सलबाड़ी आंदोलन को केंद्र में रखकर लिखी गई है। नक्सलबाड़ी आंदोलन का जन्म 22 मई 1967 को हुआ था जबकि इस कहानी की रचना आंदोलन के दस-बारह वर्ष बाद 1975-1979 के दौरान हुई थी। संजीव प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले यथार्थवादी कथाकार हैं। आजादी के 30 साल बाद जब छठवीं लोकसभा के गठन के बाद भी आम जनता के प्रति सरकार के रवैये में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया तो गरीब, शोषित और पीडित जनता नक्सलवादी आंदोलन की तरफ मुड़ती गई। कहानी को पढ़ने के बाद कहीं भी नक्सलवादियों से घृणा नहीं होती है बल्कि उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है। कथाकार संजीव ने तो इस कहानी में नक्सलियों को अपराधी मानने से ही इन्कार कर दिया है और उन्हें बुद्धिजीवी करार दिया है। उनका मन जेल के दृश्य को देखकर उदास हो जाता है कि –"यहाँ

---

6. संजीव, 'टीस', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 63

चोर, डाकू, व्यभिचारी, सज़ायाफ्ता क़ैदी, बुद्धिजीवी नक्सलियों को पीट रहे थे। मुझे अपराध और अपराधी का वृत फैलता-सा लगा।"[7] संजीव प्रस्तुत कहानी में मनुष्य को नक्सली बनाने वाली सामाजिक-प्रशासनिक व्यवस्था, पुलिस तंत्र और न्यायपालिका को कटघरे में खड़ा करते हैं। कहानी का नैरेटर सिद्धार्थ एक अभिजात्य परिवार का युवक है जिसके पिता सेशन कोर्ट के जज, बड़े भैया एस. पी., छोटे भैया जिलाधीश तथा जीजा गृह विभाग के सचिव हैं। प्रेसिडेंसी कॉलेज में दाखिले के बाद वह अपने आप को पारिवारिक बंधनों से मुक्त पाता है। यहीं उसकी मुलाकात सचिन और संघमित्रा के परिवार से होती है। इस बीच वह मार्क्स, हेगेल, लेनिन और माओ पर कई विस्तृत चर्चाओं में शामिल हो चुका था। क्लास वे अक्सर कम करते और वाद-विवाद ज्यादा। संघमित्रा, सचिन की बहन थी और मेडिकल की एक मेधावी छात्रा। उसके पिता टीवी के मरीज थे और 'कल्याणी सेनिटोरियम' में इलाज के लिए भर्ती थे। सचिन और सिद्धार्थ के बहस के मुद्दे अक्सर सामाजिक व्यवस्था में बदलाव और खूनी क्रांति से संबंधित होते थे। जबकि अपराधवृति को समाप्त करने के लिए संघमित्रा हिंसक प्रवृत्ति वाले मनुष्य के जीन्स को बदलना चाहती थी। वह मार्क्स और लेनिन के सिद्धांतों से इस सामाजिक अव्यवस्था का हल सुलझ जाएगा, ऐसा नहीं मानती थी। लैब में मुर्दे की चीर-फाड़ देखकर बेहोश हो जाने वाली इस लड़की को आगे चलकर इस बिकी हुई न्याय-व्यवस्था ने नक्सलवादी करार दे दिया और –"उसके गुप्तांग में रूल घुसाकर ...मथकर मारा गया।"[8] क्योंकि वे आदमी के लिए इस दोषी व्यवस्था से लड़ रही थी। सचिन का यह बयान स्वतंत्र भारत की न्याय व्यवस्था का पोल खोलता है –"मुझे इस पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्याय-व्यवस्था में विश्वास नहीं है।"[9] सिद्धार्थ जब अपने जज पिता से सचिन को छुड़ाने की बावत कहता है कि

---

7. *संजीव, 'अपराध', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 92*

8. *वही, पृष्ठ संख्या – 95*

9. *वही, पृष्ठ संख्या – 88*

सचिन अपराधी नहीं है बल्कि मानवता के प्रति समर्पित युवक है तो उसके पिता कहते हैं कि –"बेटे, हम जिसे न्याय कहते हैं, वह तथ्य-सापेक्ष है, सत्य-सापेक्ष नहीं है। तथ्य का प्रमाण स्वयं में सामर्थ्य-सापेक्ष है।"[10] अर्थात न्याय-व्यवस्था शुरू से ही सामर्थ्यवान लोगों की दासी रही है। और सचिन को फाँसी की सजा दे दी जाती है।

अतः संजीव ने खुलकर इस कहानी में सत्ता और व्यवस्था में बैठे लोगों को अपराधी करार दिया है न कि सचिन और संघमित्रा जैसे बुद्धिजीवी नवयुवकों को। वे सत्ता पर काबीज अवसरवादी, स्वार्थलोलुप और पूँजीवादी व्यवस्था का पोल खोलते हैं और गरीब मजदूरों, किसानों को अपने हितों की रक्षा के लिए एकजुट रहकर शांतिपूर्ण आंदोलन की प्रेरणा भी देते हैं।

भूखे रीछ

प्रस्तुत कहानी शोषक और शोषित के संघर्ष की कहानी है। रामलाल इस कहानी में शोषित और दलित पात्र है जो गाँव के सामाजिक-भेदभाव से भागकर कोलियरी में मजदूरी करने आया है। परंतु यहाँ भी गरीबों का शोषण और अफसरों की अनैतिकता अनवरत जारी है। अफसर मिल्टन साहब के चंगुल में फँसी एक लाचार लड़की रजिया को मुक्त कराकर मास्टर के कहने पर उससे विजातीय विवाह करता है। अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए वह ओवरटाइम भी करता है फिर भी उसकी हालत दयनीय है। वहीं दूसरी ओर कारखाना में अफसरों के वेतन में वृद्धि होती है और मजदूरों का ओवरटाइम बंद। रामलाल को महसूस होता है कि –"हमारा कोई माई-बाप नहीं है इस दुनिया में! सरकार भी उन्हीं लोगों की है, पुलिस और अदालत भी उन्हीं लोगों की, कानून भी उन्हीं लोगों का।"[11] यहाँ मास्टर संघर्ष का प्रतीक है। वह हमेशा मजदूरों के हक के लिए लड़ता है। उन्हें आपस में संगठित रखने का

---

10. संजीव, 'अपराध', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 87

11. संजीव, 'भूखे रीछ', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 100

प्रयास करता है। उसमें व्यवस्था के प्रति आक्रोश दिखता है। वह मजदूरों को आपस में बँटने से रोकता है –"हम यह प्रतिज्ञा करें कि काम पर जाएँगे तो सब, वरना कोई नहीं!"[12] वह मजदूरों के हितों के लिए आंदोलन करता है। दूसरी तरफ वह निम्नमध्यवर्ग है जो सदियों से अन्याय सहकर बिना प्रतिरोध के काम किये जा रहा है, और मरे जा रहा है। अपनी नौकरी बचाने के लिए अपनी बेटियों तक को दांव पर लगाने की उनकी विवशता इस कहानी में उजागर होती है। परंतु कहानी के अंत में मास्टर की विजय होती है और रामलाल का पूरा परिवार जुलूस में शामिल होकर आंदोलन का हिस्सा बनता है।

मजदूरों को संगठित करना और शोषकों से संघर्ष करने की शिक्षा देना ही कथाकार का प्रमुख उद्देश्य है।

आप यहाँ हैं (कहानी संग्रह)

जसी-बहू

'आप यहाँ हैं' कथाक्रम की दृष्टि से संजीव का दूसरा कहानी संग्रह है जिसका प्रकाशन 1984 में अक्षर प्रकाशन दिल्ली से हुआ। प्रस्तुत कहानी संग्रह की प्रथम कहानी है **'जसी-बहू'**। इस कहानी संग्रह के अधिकांश कहानियों में स्त्री की पीड़ा और संघर्ष को दर्शाया गया है। कई कहानियों में आदिवासियों, मजदूरों, बेरोजगारों का यथार्थवादी रूप दिखता है।

जसी-बहू एक दलित महिला है इसलिए वह दोहरे शोषण और उत्पीड़न का शिकार है, एक दलित होने के नाते, और दूसरी महिला होने के नाते। प्रस्तुत कहानी का केंद्र बिंदु गाँव में होने वाली उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों पर अत्याचार है। जसी-बहू चमार जाति की एक महिला है जिसका पति गवना के कुछ दिन बाद ही कलकत्ता कमाने चला जाता है। वह घर-गृहस्थी का बोझ अकेले अपने कंधे पर उठाती है। परंतु घर में पुरुष न होने के कारण उच्च

---

12. संजीव, 'भूखे रीछ', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 105

वर्ण के लोगों के साथ-साथ सम्यवर्ग के लोग भी उसे कामुकता की दृष्टि से देखते हैं। वह अपनी जवानी और पति के आने का संदेश को हमेशा छुपाना चाहती है जो छुपने वाले नहीं थे। सितई पंडित जबरदस्ती उसके घर में घुसता है और कराहते हुए बाहर निकलता है। प्रधान से इसकी शिकायत करने पर प्रधान उल्टे जसी-बहू को ही किसी दूसरे के घर बैठ जाने की सलाह देता है। अर्थात गाँव की पंचायत व्यवस्था भी एक प्रकार से दलित नारियों के इज्जत की रखवाली करने में असमर्थ है। संजीव रेखांकित करते हैं कि वह स्वाभिमानी महिला है, किसी के खेतों में काम करने नहीं जाती है भले ही उसे पानी पीकर सो जाना पड़े। उसकी यह स्वाभिमानी वाली छवी सवर्ण समाज की आँखों में खटकता है। आखिर एक दिन सितई पंडित के बाग से आम चुराते वक्त सितई पंडित द्वारा पकड़े जाने पर उसे अपनी इज्जत का सौदा करना पड़ता है। जब उसका पति कलकत्ता से वापस लौटता है तो उसके पेट में सितई पंडित का सात माह का बच्चा रहता है। वह अपने पति को सितई पंडित से बदला लेने को ललकारती है परंतु जसी उसे ही कलंकिनी और कुलछिनी कहकर पीटता है। सितई के डर से जब वह उसे अपने घर ले जाना चाहता है तो वह स्वयं अपने पति का परित्याग करती है। उसका आत्मसम्मान जागृत होता है, वह कहती है –"जौने भतार की शेखी पे सोहागिन बनी रहे, ऊ भतार मरि गा रे, हट मोका हाथ जिन लगाए...!"[13] वे ऐसे पति को दुत्कारती है जो उसकी रक्षा करने में असमर्थ है। कहानी का यह भाव जयशंकर प्रसाद के नाटक **'ध्रुवस्वामिनी'** के जैसा है जहाँ ध्रुवस्वामिनी अपने कायर पति रामगुप्त का परित्याग करती है। जसी-बहू उसके सामने ही अपने माथे का सिंदूर पोंछ लेती है। वहीं जसी दूसरा विवाह करके सितई का हलवाही पकड़ लेता है।

अर्थात गाँव में आज भी जसी-बहू जैसी कितनी नारियाँ सितई पंडित जैसे सवर्ण से मानसिक, शारीरिक और आर्थिक शोषण से पीड़ित है।

---

13. संजीव, 'जसी-बहू', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 126

पुन्नी माटी

इस कहानी के नायक एक भूतपूर्व जमींदार श्रीधर राय जी हैं। जिनकी जमींदारी तो समाप्त हो गई है परंतु वे अपनी झूठी शानों-शौकत, रौब और इज्जत को ढ़ो रहे हैं। संजीव यह बताना चाहते हैं कि किस प्रकार जमींदार अपनी पूँजी का रौब दिखाकर आम जनता को अपने कदमों में झुकाये रहता है और पूँजी समाप्त होने पर जब समाज में उनका रौब समाप्त हो जाता है, तो इस बात को वे सहसा स्वीकार नहीं कर पाते हैं। कथा के नायक की भी यही स्थिति है। उनकी माली हालत भीतर से खोखली हो चुकी है, जिसे वे दुर्गापूजा के माध्यम से ढँकने की नाकाम कोशिश करते हैं। उनकी एक पुत्री शिखा है जिसका विवाह तक वे दहेज के अभाव में तथा बेहतर वर की चाह में नहीं कर पाए हैं। और आज तो हालात यह है कि शिखा रिसेप्शनिस्ट की नौकरी करती है जिससे घर खर्च चलता है। शिखा के विवाह को लेकर पिता और पुत्री दोनों निराशावादी मानसिकता का शिकार हो जाते हैं। हर पिता की तरह श्रीधर राय भी पुत्री के विवाह के लिए चिंता में घुलते जा रहे हैं और निराशा उन्हें तोड़ती जा रही है। वे सोचते हैं –"ऐसे कब तक चलेगा? ...कब तक? इस बार की भी पूजा सिर पर चली आई और बेटी अनब्याही पड़ी है। इस तरह नौकरी करते हुए ही उम्र कट जानी है क्या!...कहीं किसी दिन ऐसा न हो कि शिखा जाए और लौटे ही नहीं।"[14]

बंगाल में यह रिवाज है कि दुर्गापूजा के समय दुर्गा की प्रतिमा को तैयार करने के लिए वेश्याओं के दरवाजे की थोड़ी मिट्टी लगती है जिसे मिलाकर माँ दुर्गा की प्रतिमा तैयार की जाती है। इसे ही पुन्य की मिट्टी कहते हैं। आज तक इस पुन्नी मिट्टी के लिए किसी ने भी जमींदार से पैसा नहीं मांगा था। किंतु अब जब कि उनका रौब समाप्त हो गया है उनसे इस मिट्टी के लिए दस रुपया मांगा जाता है। उन्हें ऐसा महसूस होता है कि दस रुपया मांगकर उनके अस्मिता को चुनौती दी गई है। परंतु वे वेश्याएँ उन्हें मुफ्त में मिट्टी देने से इन्कार कर देती हैं।

---

14. संजीव, 'पुन्नी माटी', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 129-130

"बल्ल्भपुर के, शान से जीने वाले जागीरदार तो सब कुछ खरीद सकते थे – पाप-पुण्य, न्याय-नीति, इज्ज़त तक! आज पुण्य की माटी खरीदने-भर की औकात न रही! पुराना पैसा गाड़-गाड़कर रखा हुआ है, बेटी कमाकर लाती ही है, कहाँ रखेंगे यह सब।"[15] वे इन औरतों को गालियाँ बकने लगते हैं और इसी बकझक में उन्हें पता चलता है कि उनकी बेटी को भी रिसेप्शनिस्ट की नौकरी की आड़ में कई मालदार पार्टियों को खुश करना पड़ता है। उन्हें बहुत गहरा आघात लगता है और वे अपने घर की माटी को ही पुण्य की माटी मान लेते हैं। समाज में पूँजीपति वर्ग द्वारा अपने को उच्च समझने की मानसिकता उजागर हुई है। पूँजीपति वर्ग अपने आप को इतना ऊँचा समझ लेता है कि सारे कार्य-व्यापार उसकी इच्छा के अनुरूप होगा। परंतु वक्त किसी का इंतजार नहीं करता है। योग्य वर की तलाश में जमींदार श्रीधर राय अपनी बेटी का ब्याह ही नहीं कर पाते हैं और वह बाध्य होकर कुमार्ग पर अग्रसर हो जाती है।

कठपुतली

कठपुतली कहानी भी नारी की समस्या को लेकर लिखी गई है। संजीव की कहानियों में नारी कई रूपों में उपस्थित हुई हैं। परंतु यह नारी के प्रति उनका सम्मान ही कहेंगे कि नारी के विभिन्न शोषण के रूपों को उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर किया है। सदियों से अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती नारी आज भी कठपुतली बनी हुई है –"औरत जाति मात्र कठपुतली होती है। कभी माँ-बाप, कभी भाई-बहन की डोर से, तो कभी स्वामी या संतान की डोर से बँधी नाचती ही रहती है।"[16] कहानी की नायिका कल्याणी को भी उसका पिता अर्थाभाव के कारण दो हजार रुपये में एक सेठ को बेंच देता है और वह सेठ उसे रखैल

---

15. *संजीव, 'पुन्नी माटी', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 132*

16. *संजीव, 'कठपुतली', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 118*

बनाकर रखता है। मात्र घंटे दो घंटे के लिए सेठ का अंतरंग और बाकी एकाकी, सूना और बदनाम जीवन। अपनी इच्छाओं और भावनाओं को एक फिकी हँसी की परत ओढ़ाये वह जीये जा रही थी।

सेठ कहता –"चावल, दाल, तेल, नमक, घी, सब्जी, कोयला, तुम्हें किस बात की तकलीफ है?"[17] परंतु नारी क्या सिर्फ अपना पेट भरने के लिए जियेगी, उसकी अपनी इच्छा, आकांक्षा, भावना, आत्मसम्मान कुछ भी क्या नहीं है? इस पुरुष प्रधान समाज में नारी ही हर कृत्य के लिए दोषी होती है। यहाँ तक कि जिस पिता ने उसे सेठ को बेचकर रखैल बना दिया वह भी उसे अब पतिता समझता है और अलग बरतन में खाना देकर, उसका मायके आना समाज से छुपाना चाहता है। खैर सेठ की लड़की के विवाह में जाकर कल्याणी के अंदर की दमित नारी फूँकार मारकर उठ बैठती है और वह सेठ से पत्नी की मर्यादा के लिए जिद कर बैठती है। एक रखैल, पत्नी की मर्यादा चाहती है। सेठ भड़क उठता है, उसका खाना तक बंद करवा देता है। परंतु अंततः कल्याणी के जिद के आगे झुककर उसका विवाह शंभुपाल नामक एक मुर्तिकार से करवा देता है। परंतु यह विवाह भी एक छलावा सिद्ध होता है। कल्याणी के विवाह के बाद भी सेठ का आना अनवरत जारी रहता है –"हम दोनों के बीच सेठ एक सड़ाँध की तरह बदबू देता रहता है। मुश्किल तो यह है कि ये सेठ के सामने भीगी बिल्ली बने रहते हैं और उसके जाने के बाद मुझ पर घृणा से थूकने लगते हैं, ठीक मेरे बाबा और मेरी माँ की तरह, पड़ोस के डींग हाँकनेवाले नपुंसक मर्दों और औरतों की तरह।"[18]

अंततः समाज, पिता, माता, पति भाई का इतना घृणा वह बर्दाश्त नहीं कर पायी और फाँसी पर झूल गई। उनका कहानी के नैरेटर से यह प्रश्न कि क्या तुम भी मुझसे घृणा करते

---

17. संजीव, 'कठपुतली', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 115

18. संजीव, 'कठपुतली', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 119

हो? पाठक को यह सोचने पर विवश कर देता है कि उन्होंने आत्महत्या नहीं कि बल्कि उनकी हत्या कर दी गई। आखिर उनका हत्यारा कौन है? विवश पिता, नपुंसक पति, क्रूर सेठ या अर्थाभाव, शोषण, उत्पीड़न, भुखमरी आदि समस्याएँ?

ट्रैफिक जाम

ट्रैफिक जाम वर्तमान शहरी जीवन का एक भयावह परिदृश्य है, तकनीकी विकास के अंधी दौड़ में पंगु होता सुविधावादी समाज का परिणाम है। चीन के बिजिंग शहर में अब तक का सबसे बड़ा ट्रैफिक जाम लगा था जो कई दिनों तक रहा था। हमारे देश के प्राय: सभी शहर ट्रैफिक जाम नामक बिमारी से पीड़ित हैं। सड़क पर गाड़ियाँ रेंगती सी नजर आती हैं। इसी ट्रैफिक जाम को कम करने के लिए दिल्ली में इभेन और ऑड नम्बर की गाड़ियों को अलग-अलग दिन चलाने के निर्देश दिये गए थे। कई शहरों में इससे निजात पाने के लिए उड़ान पुलों और मेट्रो का जाल बिछाया जा रहा है पर फिर भी हम इस समस्या के समाधान के नजदीक नहीं पहुँच पा रहे हैं। संजीव ने इस ट्रैफिक जाम से होने वाली समस्याओं को इस कहानी का आधार बनाया है। इस ट्रैफिक जाम से परीक्षा देने जाने वाले छात्र, स्कूलों, कॉलेजों में जाने वाले शिक्षक, विभिन्न कार्यालयों में जाने वाले क्लर्क, अधिकारी, अस्पतालों में जाने वाले मरीज से लेकर डॉक्टर सभी परेशानी में पड़ते हैं। रास्ते पर चलते समय ट्रैफिक की नियमों का समुचित रूप से पालन न करना और सबको अपने गंतव्य पर पहुँचने की जल्दीबाजी ही इस ट्रैफिक जाम का प्रमुख कारण है। ट्रैफिक जाम के दौरान घटने वाली विभिन्न घटनाओं और यात्रियों के बीच असुरक्षा बोध का बड़ा ही सजीव चित्रण प्रस्तुत कहानी में किया गया है।

प्याज के छिलके

सदियों से उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करता आया है और निम्न वर्ग इसे अपना भाग्य समझकर सहता आया है। निम्न वर्ग को शिक्षा से वंचित करके उनमें होने वाले नैसर्गिक विकास को कुंठित कर दिया गया है। उन्हें अछूत घोषित कर उनके आत्मसम्मान को कुचला गया। उन्हें झूठे चोरी-डकैती के केसों में फँसाया गया। उनकी माँ-बहनों के साथ सवर्ण समाज द्वारा जबरदस्ती किया गया। यह सब भारतीय समाज में आम दृश्य हैं। परंतु कहानी में दलित

युवती कैलशिया द्वारा मुंशी के खेत से एक प्याज उखाड़ लेने को मुंशी बर्दाश्त नहीं कर पाता है और उसका झोंटा पकड़कर पटक देता है। जबकि मुंशी स्वयं बड़ी-बड़ी चोरियाँ आसानी से पचा जाता है। इस अन्याय का विरोध करने पर हरिजनों के नेता रामलगन राम के नेतृत्व में आई मजदूरों, किसानों और हरवाहों की भीड़ पर मुंशी का बेटा गोली चला देता है। और कैलशिया की हत्या कर देता है। एक प्याज की चोरी की सजा मौत। सारी प्रशासनिक न्याय व्यवस्था गूंगी-बहरी बन जाती है। राजनीतिक पार्टियों के नेता मुद्दे को भुनाकर एम.पी. एम. एल. ए बन जाते हैं। परंतु कैलशिया के हत्यारों को सज़ा तक नहीं होती है। नेता जी अछूत कैलशिया की माँ के हाथ का पानी भी पीते हैं, अपनी दलित भक्ति दिखलाते हैं, संजीव का व्यंग्य अच्छा है –आज भी हमारे देश के नेता चुनाव के समय दलितों के घर भोजन करते हैं परंतु अपने यात्रा के पहले दलितों में साबुन-सोडा बाँटा जाता है ताकि दलितों के शरीर की बदबू नेता जी के नथूनों में न घुस जाए। उनसे हाथ मिलाने के बाद नेता जी सेनेटाइजर से हाथ साफ करते हैं। यह पूरी यथार्थवादी कहानी है। भारतीय समाज का यह दृश्य आज भी सर्वत्र है।

आप यहाँ हैं

आदिवासी समस्या पर लिखी गई यह एक लंबी कहानी है। आदिवासियों का जीवन आज भी बद से बदतर बनी हुई है। वे कीड़े-मकोड़े खाकर जीने को विवश हैं। बहुत सारे आदिवासी आजतक बल्व की रौशनी से भी महरूम है। भूख से मरने वालों में अधिसंख्यक आदिवासी हैं। सरकार की तरफ से उनके लिए बहुत सारी योजनाएँ बनायी जाती हैं परंतु वे महज कागजी जुमला बनकर रह जाते हैं। इन्हीं समस्याओं को संजीव ने प्रस्तुत कहानी का आधार बनाया। आदिवासियों के विकास के नाम पर आने वाले सरकारी अर्थ से वास्तव में वर्मा जैसे अफसरों, ठेकेदारों और दलालों का विकास होता है। हिंदिया जैसी आदिवासी युवती को तो खाने के लिए भात भी नसीब नहीं है। वे कंद-मूल खाकर किसी तरह गुजर बसर कर रहे हैं। उनके खून-पसीने की मेहनत उन्हें दो जुन का भोजन भी नहीं जुटा पा रही है।

कहानी में मिस्टर वर्मा एक अधिकारी हैं जिनका तबादला भारत-नेपाल के पहाड़ी

अंचल में हुआ और यहाँ हिंदिया नाम की एक आदिवासी महिला उनके घर में काम करती है। वह काफी मेहनती है क्योंकि वह एक लंबा सफर तय करके यहाँ काम करने आती है और साथ में अपने बच्चे को भी पीठ पर बाँधे रहती है। वह मनुष्य के चरित्र को पहचानती है तभी तो भालु के बारे में जिक्र करते हुए मिसेज वर्मा से कहती है –"साफ कपड़ा पहन के, हँस-हँस के बतियानेवाला मानुष से कौन जनावर ज़्यादा खतरनाक है मेमसाहब!"[19] आदिवासी उन्नति का दावा करने वाले मिस्टर वर्मा **'आप यहाँ हैं'** शीर्षक से एक रेडियो वार्ता चलाते हैं जिसमें वे आदिवासियों के उन्नति की बहुत-सी बातें करते हैं। परंतु घर में अपनी ही नौकरानी आदिवासी महिला हिंदिया से जबरदस्ती बलात्कार करते हैं। हिंदिया भाग कर आदिवासियों के जुलूस में शामिल हो जाती है और मिसेज वर्मा उल्टे उस पर चोरी का केस दर्ज करा देती हैं।

कहानी के अंतिम भाग में जब वर्मा-परिवार पिकनिक पर निकलकर हिंदिया के गाँव पहुँचता है तो हिंदिया अपने लस्कर के साथ वर्मा परिवार को घेर लेती है और कहती है – "हमारा वास्ते सरकार बहूऽऽत पैसा देता न! उ सब कहाँ जाता? उल्टे हमीं लोग चोर हैं? कौन चोर है, किसका, कौन चोरी करता – सबका हिसाब देना होगा। देखो, देखो हम लोग को देखो – कैसा माफिक जीता है हम लोग और कैसा फुटानी से रहता है आप लोग!"[20] हिंदिया में इस भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति आक्रोश है। हिंदिया के बाप के सहयोग से वर्मा परिवार वहाँ से निकल पाता है। आदिवासियों के विभिन्न समस्याओं और उनके साथ हो रहे शोषण का उजागर करना ही कथाकार का उद्देश्य रहा है। आदिवासियों का विकास करके सच्चे हृदय से उन्हें समाज के मुख्य धारा में कैसे लाया जाये यह हमारे लिए चुनौती का विषय है।

धनुष-टंकार

मजदूरों और मिल मालिकों की संघर्ष गाथा है – **'धुनष-टंकार'**। आज कारखाने में

---

19. *संजीव, 'आप यहाँ हैं', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 156*

20. *वही, पृष्ठ संख्या – 164*

एक ही श्रम के लिए मजदूरों को अलग-अलग पारिश्रमिक दिया जाता है। उन्हें स्थायी, अस्थायी एवं ठेका कर्मी के रूप में विभाजित कर दिया गया है। उनकी एकता को इस प्रकार विखंडित करने में मिल मालिकों, मैनेजमेंटों के साथ-साथ मजदूर युनियनों की मिली भगत अब जग जाहिर है। मजदूर अपने खून-पसीने से किसी कारखाने को सींचता है परंतु जब उसको उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता है तो वह बाध्य होकर विद्रोह करता है। कहानी में अस्थायी ठेका मजदूरों के संघर्ष को आधार बनाया गया है। कारखाना, रेल, अस्पताल, कोलफिल्ड, विभिन्न कार्यालय, एयरपोर्ट कोई भी ऐसी जगह नहीं बची है जहाँ ठेकेदारी प्रथा नहीं है। ठेका मजदूरों को कम वेतन के साथ-साथ पी.एफ., ग्रेच्यूटी, पेंसन और मेडिकल जैसी सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। मजदूरों के साथ दुर्घटना होने पर मुआवजा देने के डर से ठेकेदार उसका नाम ही अपने खाते से गायब कर देता है और उसे अपना मजदूर मानने से साफ इन्कार कर देता है। ऐसी ही घटना कहानी के प्रमुख पात्र झम्मन के साथ घटती है। लूज शंटिंग के कारण वह गिर जाता है और उसकी कमर टूट जाती है मगर –"झम्मन नाम का कोई मजूर ठेकेदार के खाते में था ही नहीं।"[21] उसके इलाज में उसकी पत्नी के गहने बिक जाते हैं परंतु उसकी कमर सीधी नहीं होती। मजदूरों के अनुनय-विनय पर ठेकेदार झम्मन को पहरेदारी के लिए तथा उसकी पत्नी सुरसती को लोडिंग-अनलोड़िग के लिए रख लेता है –"अपनी जवान बीवी के कंधे पर नौकरी का जुआ रखकर भेड़िये की माँद में ठेल देना झम्मन की ज़िंदगी का दूसरा बड़ा एक्सीडेंट था।"[22] प्रमुख समाजशास्त्री मैक्स वेबर की धारणा है कि नौकरशाहीकरण (disenchantment) से असम्बद्धता होती है। मजदूर का मन उस कार्य से विरक्त हो जाता है, वह मजबूरी में सिर्फ पेट के लिए कार्य करता है। विश्लेषण के इस स्तर पर कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर में बहुत साम्यता है –"इन दोनों विद्वानों ने कहा कि कारखाने

---

21. संजीव, 'धनुष टंकार', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 167

22. वही, पृष्ठ संख्या – 168

में मजदूर एवं नौकरशाही में कर्मचारी अपनी इच्छा एवं अपनी रुचि से प्रवेश नहीं करते हैं। उन्हें प्रवेश करना होता है क्योंकि उनके सामने जीवन की मजबूरी है।"[23] वह मेहनत से काम करती है और अपने आत्मसम्मान का रक्षा करती है। तभी तो उसके साथ जबरदस्ती करने वाले मुंशी को वह जेल भिजवाकर ही दम लेती है। कहानी में निर्मल वर्मा नामक एक सच्चे ठेकेदार मजदूरों के नेता का वर्णन है जो कहता है –"दुनिया के मज़दूरों एक हों।"[24] परंतु पुलिस निर्मल वर्मा को घसीटकर पुलिस वैन में बंद कर देती है। जमानत से छुटने पर वे फिर ठेका मजदूरों के पक्ष में आवाज उठाते हैं –"या तो ठेकेदारी बंद कर परमानेंट करो सबको, या ठेका मजूरों को दो।"[25] परंतु दूसरे ही दिन उग्रपंथी कहकर उन्हें युनियन से ही निकाल दिया जाता है। अब आंदोलन का भार युनियन के प्रेसिडेंट तपादार बाबू के हाथों में आता है और मैनेजमेंट निर्मल बाबू को मजदूरों को उकसाने के जुर्म में जेल भेज देते हैं।

लड़ाई की सफलता के लिए युनियन भूख हड़ताल का ऐलान करती है और सुरसती को आमरण अनशन के लिए बैठा दिया जाता है। निर्मल बाबू के काम को सुरसती आगे बढ़ाती है –"समान काम के लिए समान वेतन! यह कम पैसा ज्यादा पैसा, उससे ज्यादा पैसा देकर अलग-अलग खेमों में बाँटकर आदमी-आदमी में भेद पैदा कर उन्हें लड़ाने की गंदी कोशिश बंद होनी चाहिए। हम भी इसी देश के हैं, उत्पादन में कम योगदान नहीं है हमारा...बल्कि सबसे ज्यादा। हम इस ज़िंदगी को, इस विभेद को और नहीं बरदाश्त करेंगे।"[26] परंतु मैनेजमेंट और युनियनों के योजनाबद्ध चाल के कारण आंदोलन हास्यास्पद स्थिति में समाप्त हो जाता है।

---

23. हुसैन मुजतबा, 'समाजशास्त्रीय विचार', प्रथम संस्करण : 2010, पुनर्मुद्रित : 2012, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 148-149

24. संजीव, 'धनुष टंकार', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 171

25. वही, पृष्ठ संख्या – 172

26. वही, पृष्ठ संख्या – 173

जिस मुंशी को सुरसती पर जबरदस्ती के लिए सस्पेंड किया गया था उसकी भी बहाली के साथ आंदोलन समाप्त हो जाता है। सुरसती को लगता है कि संतरा को नहीं बल्कि उसे ही बूँद-बूँद निचोड़ा जा रहा है और नेता बिना उससे कुछ पूछे अनशन समाप्ति की घोषणा कर देते हैं।

इस प्रकार फिर एक बार मालिक और मजदूरों के संघर्ष में मालिक विजयी होते हैं। सुरसती को ऐसा लगता है जैसे उसे धनुष-टंकार हुआ है। उसका सारा बदन अकड़ रहा है, और वह मंच पर बेहोश होकर गिर जाती है। इस प्रकार सच्चाई, मेहनत बेहोश है और मंच पर पड़े कलाकंद को स्वार्थी नेता लूट रहे हैं।

लोड शेडिंग

प्रस्तुत कहानी निम्न-मध्यवर्ग के अर्थाभाव और उससे होने वाली पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर लिखी गई है। परिवार के छः सदस्यों का बोझ सिर्फ एक कंधे पर, ऐसी स्थिति में पारिवारिक रिश्तों में तनाव उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है – "दरअसल संबंधों को हम जी नहीं रहे हैं, महज निबाहे जा रहे हैं।"[27] आज निम्न-मध्यवर्ग सबसे ज्यादा हैरान और परेशान है। बाजार मूल्य में आग लगी हुई है और उसकी आय में कोई बढोत्तरी नहीं है। बेरोजगारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है सारी सरकारें नए रोजगार के सृजन तो दूर पुराने रोजगार को बचा पाने में ही विफल हैं। ऐसे में आज का निम्न-मध्यवर्गीय युवा दिशाहारा है। एकाध को अगर नौकरी मिल भी गई तो वह छः-सात लोगों का खर्च चलाने के लिए अपनी ड्यूटी और ओवरटाइम में पीसता है। हमारे देश की यह विएँबना है कि यहाँ मेहनती और ईमानदार व्यक्ति हमेशा शोषण का शिकार होकर लकीर का फकीर बना रहता है तथा शोषक फलता-फूलता और सुविधा-संपन्न रहता है। कहानी में कथाकार 'मैं' के रूप में मौजूद है और वह महसूस करता है कि अर्थाभाव के कारण ही छोटी-छोटी बातों पर परिवार के सदस्यों की बीच तनाव बढ़ जाता है। भैया-भाभी समय से पहले बूढ़े होते जा

---

27. संजीव, 'लोड शेडिंग', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 186

रहे हैं, भाभी की सुबह की प्रार्थना अब बड़बड़ाहट में बदल चुकी है तो भैया अपना आक्रोश नेता, प्रशासन, ठेकेदार और पुलिस पर व्यक्त करते हैं –"अजीब देश है! सीना फुलाकर कहेंगे, तकनीकी जानकारी में हम दुनिया में तृतीय स्थान रखते हैं और यहाँ हर चीज़ में कटौती। ...ब्लैक आउट कर रखा है। पता नहीं, अब किससे लड़ाई है? ...ये साले भ्रष्ट नेता, सेठ, ठेकेदार, पुलिस अफसर, सरकारी प्रतिष्ठानों के आरामतलब मज़दूर देश को बेचकर खा जाएँगे।"[28] सेठ जेनरेटर से अपने घर को रौशन करता है जब कि निम्न-मध्यवर्ग लोड शेडिंग के अंधेरे के साथ जेनरेटर का धुआँ और कानफोडू आवाज के साथ जीने के लिए बाध्य है। अर्थाभाव ने उनके प्रतिरोध की शक्ति को छिन्न कर दिया है। कथा के अंत में चरणजीत द्वारा सेठ के जेनरेटर पर बम फेंकवाकर कथाकार ने प्रतिरोध की आशा की किरण को जगाया है।

धावक

यह कहानी दो भाई अशोक दा और भम्बल दा के रूप में दो अलग-अलग चरित्रों का निर्माण करता है। अशोक दा जहाँ एक ओर व्यक्तिगत और आत्मकेंद्रित जीवन व्यतीत करते हैं, वहीं भम्बल दा का जीवन समाज और परिवार केंद्रित है। भम्बल दा एक सीधा-साधा सरल और स्वाभिमानी युवक है। वह कभी भी अपनी उन्नति के लिए गलत या बेइमानी का रास्ता नहीं अपनाता है। अल्प आय में भी वह अपनी माँ और बहन की जिम्मेदारी से नहीं भागता है। वह बहन का विवाह करवाता है। किसी भी सामाजिक कार्य के लिए वह तत्पर रहता है– "किसी को अस्पताल पहुँचाना है, तो एम्बुलेंस बनकर उनके कंधे हाजिर, घाट ले जाना है तो अर्थी के लिए उनके कंधे हाजिर, कब्रिस्तान में जा रही मौन भीड़ में कंधे झुकाए चले जा रहे हैं, शादी का सामान जुगाड़ करना है तो कंधे सामान के लिए हाजिर।"[29] वहीं अशोक दा

---

28. संजीव, 'लोड शेडिंग', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 189

29. संजीव, 'धावक', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 195

व्यक्तिगत सफलताओं को ही जीवन का आधार मानते हैं। भौतिकता का सुख उसे माँ-बहन-भाई से दूर ले जाता है। नौकरी पाकर बड़े साहब की बेटी से विवाह करके उनका रुतबा बढ़ जाता है। और इसी रुतबे के घमंड में वह अपने घर से ही घृणा करने लगते हैं। दूसरी ओर भम्बल दा माँ की बीमारी और बहन के विवाह से अकेला जूझता है, वह अपनी माँ से बहुत प्यार करता है। तभी तो प्रतियोगिता में द्वितीय स्थान का पुरस्कार प्राप्त करने के लिए जब एक प्रतिभागी उसे माँ की कसम खाने को कहता है –"तुम्हारी माँ नहीं है शायद वरना तुम इस तुच्छ पुरस्कार के लिए माँ को दाव पर नहीं लगाते मेरे भाई। तुम्हें शायद मालूम नहीं कि भम्बल ऐसे पुरस्कारों के लिए नहीं दौड़ता। मुझे तो सिर्फ अपने को तौलना था और वह मैं कर चुका...।"[30] इस प्रकार पूरी जिंदगी जिम्मेदारी का बोझ ढोते-ढोते हार्ट अटैक से उनकी मृत्यु हो जाती है। और मरते-मरते अपने भैया के नाम जो पत्र लिखा –"भैया, दौड़ में जीत उसी की होती है जो सबसे आगे निकल जाता है, चाहे लंगी मारकर ही, या गलत ट्रैक हथियाकर ही। पुरस्कार पाने का जुनून ही सवार रहता है उस समय। मगर मुझे खुशी और संतोष है कि मैंने लंगी नहीं मारी, गलत ट्रैक नहीं पकड़ी। पीठ पर तुम्हारा छोड़ा हुआ बोझ था – परिवार का, उसे लेकर पूरी दौड़ दौड़नी थी मुझे।"[31]

इस प्रकार हम कह सकते हैं धावक एक सच्चे, ईमानदार, साहसी व्यक्ति की कहानी है जो जीवन के रेस में दौड़ते-दौड़ते असमय ही मर जाता है।

भूमिका और अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह)

महामारी

यह कहानी संजीव की तीसरी कहानी संग्रह **'भूमिका और अन्य कहानियाँ'** से ली गई हैं जिसका प्रकाशन 1987 में हुआ था। ग्रामीण समाज में व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़िवादिता,

---

30. संजीव, 'धावक', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 194

31. वही, पृष्ठ संख्या – 199

विपन्नता, अज्ञानता को इस कहानी में कथ्य का आधार बनाया गया है। दाने-दाने को तरसते बच्चे, गरीबी और गंदगी में पलता बचपन, बाल मजदूरी को विवश बालपन, दरिद्रता में डूबी युवा शक्ति और वृद्ध, यह है भारतीय ग्राम की तस्वीर। कथानायक बीस साल बाद बैशाख में गाँव पहुँचता है तो उसे गाँव की स्थिति में कोई परिवर्तन नजर नहीं आता है। आज भी लोग चेचक के प्रकोप से बचने के लिए छोहरी बाँटने और पचरा गाने में विश्वास रखते हैं। किसी भी प्रकार की बीमारी में झाड़-फूँक का सहारा लेते हैं। महामारी से बचने के लिए लोग मनौतियाँ माँगते हैं और फिर छोहरी खिलाने के लिए भीख मांग लाते हैं। कथानायक को अपनी गाँव की स्थिति पर गुस्सा भी आता है और तरस भी। वह याद नहीं कर पाता है कि दो-चार संपन्न घरों को छोड़कर किसी के यहाँ भी दो जुन का भोजन बना हो। आम के साथ सूखी रोटियाँ खाई जाती हैं। इतना ही नहीं, आम की गुठलियों का ढोह भी बचा कर रखा जाता है जो बाद में काम में आते हैं। गाँव में गरीबी का आलम यह था कि तेल का खर्च बचाने के लिए बुढ़ियाँ, प्रौढ़ायें और नौ-नौ साल की बच्चियाँ तक मुंडन करा लेती थीं। यह डरावना सच है हमारे भारतीय गाँव का जहाँ रंगई बहू अपनी छः साल की बच्ची को डाँटती है कि जल्दी खाकर कुछ काम-धंधा देखो, रंगई बहू के डर से बच्ची जल्दी-जल्दी चिमड़ रोटी निगल कर बासी दाल पी जाती है और दूसरे ही क्षण उल्टी कर देती है। रंगई बहू बच्ची को ताबड़तोड़ पीटने लगती है –"कैसे-कैसे जुगाड़ कर लाती हूँ दाना-दाना ...और धामिन ने सब उगल दिया! अभी से रट लगाएगी भूख-भूख तो क्या लाकर दूँगी? ...बाप का कलेजा या अपना! ... वह बच्ची जल्दी-जल्दी काछ कर रखने लगी थी उल्टी को वापस कटोरे में, उसे फिर से खाने के लिए।"[32] दिल को दहला देने वाला यह दृश्य हमारे ही ग्रामीण भारत का है और बीस साल बाद भी गाँव की स्थिति में कोई भी परिवर्तन नहीं आया है। आज भी रंगई बहू कहीं न कहीं कथावाचक के मस्तिष्क में कौंध जाती है। कथावाचक का प्रयास गाँव के लोगों में

---

32. संजीव, 'महामारी', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 240

महामारी के प्रति धारणा परिवर्तन करवाने की है। भूख, गरीबी, बेरोजगारी, गंदगी, अशिक्षा सबसे बड़ी महामारी है। जिस दिन गरीबी और बेरोजगारी से मुक्ति मिलेगी उस दिन स्वस्थ चेतना जागृत होगी और मानसिक विकास होगा। मनुष्य अंधविश्वास के भँवर से बाहर निकलेगा। अपने भाग्य को उज्ज्वल करने के लिए वह बिल्लियों की खेढ़ी पर नहीं बल्कि अपने कर्म और शिक्षा पर ध्यान देगा। झाड़-फूँक से बाहर निकलकर अस्पताल का सफर तय करेगा, सरकारी सारी योजनाओं को जब गाँव में समुचित ढंग से लागू किया जायेगा तभी इस प्रकार के महामारी से मुक्ति संभव है।

लांग साइट

यह एक चरित्र प्रधान कहानी है जिसके नायक अपने ही धुन में मशरुफ बंगाली व्यक्तित्व के धनी, घर-परिवार से बेखबर हराधन दा हैं। घर में सिर्फ तीन सदस्य पति-पत्नी और बच्चा, फिर भी अभाव भरा जीवन। हराधन दा चर्चा तो करते हैं प्रधानमंत्री के मेनू का परंतु खुद नसीब होता सड़ी मछली का झोल और भात। फिर भी अपनी जन्मभूमि पर पूरा गर्व – *'ओह अपूर्वो! सोनार बांग्ला।'* हराधन दा के माता-पिता को दंगाइयों ने काट दिया था तथा उनकी बहन को उठा ले गए थे। तब से दादा ऐसे दंगाइयों के खिलाफ डायरेक्ट एक्शन के पक्षधर थे। हराधन दा हमेशा अखबार पढ़ते हैं, देश-दुनिया की खबर रखते हैं और अन्याय के खिलाफ आवाज उठाते हैं। पर उनकी आवाज पूँजीपतियों द्वारा दबा दी जाती है। हराधन दा का बेटा पुटुल किरासन तेल ब्लैक करने वाले सेठ के खिलाफ आवाज उठाता है तो उसे गुण्डा घोषित कर सेठ उसको पिटवा कर जेल भिजवा देता है। उसे थप्पड़ मारने में, गुडों से नफरत करने वाले हराधन दा भी होते हैं। परंतु जब वे चश्मा लगाकर देखते हैं तो अपना बेटा दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार आज हमारे देश में भीड़ को लांग साइट हो गया है। वह सच या झूठ पर विचार किये बिना ही किसी पर भी टूट पड़ती है। जब तक भीड़ छँटती है तब तक कई निरपराध इसके शिकार हो चुके होते हैं। फुचकी हमारी भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था को गालियाँ देती है–"मेरा बेटा ... तुम ...के सामने टुकड़े नहीं फेंक सकता, इसलिए वह गुण्डा है, सेठ तुम्हारी आँखों के सामने ब्लैक करके भी गुण्डा नहीं है क्योंकि तुम उसका कौरा खाते हो।...

मैं पूछती हूँ ...सेठ पर भी किसी... के हाथ उठे हैं, पार्टी के चंदा लेते ही उसके ... में समा जाते हो, जुतियाँ चाटने लगते हो!"[33] पुटुल की रिहाई नहीं होती है। निराश हराधन दा अखबार के पत्र वाले कॉलम से मुख्यमंत्री तक न्याय की गुहार लगाते हैं परंतु न्याय पूँजीपतियें की रखैल बन चुकी है। सड़ांध मारती व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने वाला ही अपराधी करार दे दिया जाता है, जबकि भ्रष्ट नेता, मंत्री, पूँजीपति, अधिकारी, कर्मचारी ऐश कर रहे हैं। संजीव ने कहानी में यह दिखलाया है कि एशियाड खेलों के सीजन में सभी कर्मचारी राजनेता अपना काम-धंधा छोड़कर कमेंट्री सुनते हैं, ऐसे लोग देश का निर्माण कर रहे हैं।

अन्तराल

ईश्वरचंद्र विद्यासागर के अथक प्रयास से किसी प्रकार देश का बहु-संख्यक समाज बाल विवाह से मुक्त एवं विधवा विवाह के पक्ष में खड़ा तो हुआ परंतु अपने जवान बेटा-बेटियों के विवाह में आज भी उनकी इच्छाओं की परवाह नहीं करते हैं। दहेज, इज्जत और मान-सम्मान के नाम पर आज भी बेटे-बेटियों को गाय और बैलों की तरह खरीदा और बेचा जाता है। युवक-युवतियों के विवाह की डोर बुजुर्ग अपने हाथों में थामें हुए हैं। जिनको एक-दूसरे के साथ जीवन बिताना है, वे विवाह से पहले एक-दूसरे से अनजान रहते हैं। बाल विवाह, पुराने दकियानुसी रीति-रिवाजों एवं रूढ़िवादिता को ढोती यह कहानी हमें मानसिक पिछड़ेपन से उबरने का संदेश देती है।

कहानी का नायक राजकुमार का विवाह बचपन में ही लहूरा पट्टीवाली से होती है। काफी छोटा होने के कारण उसे अपने विवाह की बातें कुछ भी याद नहीं है। युवा होने पर उसकी मामी एक मेले में उसकी मुलाकात उसकी भावी पत्नी से कराती है, उसके बाद बुढ़वा-बरगद के नीचे दोनों चोरी-छिपे मिलना शुरू करते हैं। राजकुमार उसे अपने पैसे से खरीदी हुई चोली पहनाता है। नई चोली पहनकर जब वह घर में आती है, उसी वक्त उसके भावी ससुर उसके

---

33. संजीव, 'लांग साइट', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 248

गवने का टेवा लेकर आये हुए थे। माँ के पूछने पर भी वह चोली देने वाले का नाम फाँस नहीं करती है। उसके ससुर को शक होता है और वे रिश्ता तोड़ देते हैं। राजकुमार की बहन कहती है –"लड़की बदचलन है। बुढ़वा बरगद कोई है वहाँ, वहीं अपने यार से मिलने जाती है। छिनाल कहीं की! दादा ने खुद देखा, नयी चोलिया पहनकर घर में गई, उसकी माँ ने लाख पूछा, लेकिन नहीं बताया।"[34] नायक में इतना हिम्मत नहीं है कि वह अपने पिता के सामने यह कह दे कि चोली देने वाला वही है। वह उसे दोषमुक्त तो करार दे रहा था लेकिन अपनी गलती स्वीकारने का साहस नहीं जुटा पा रहा था –"तो अब तू मेहरिया का पच्छ ले रहा है। चमार के सारे! अबहिं तो तूने मूँ भी नहीं देखा उसका, तब का यह हाल है, देख लेगा तो...।"[35] वैसे यह भारतीय समाज की रीति है कि दोषी हमेशा लड़की ही होती है, बदचलन वही होती है, टोनहिन वही होती है। पुरुष हमेशा निर्दोष होता है अतः विवाह टूट जाता है। दोनों की इच्छा के विरुद्ध दोनों का विवाह अलग-अलग जगहों पर कर दिया जाता है। पर वह एक भारतीय नारी है और अपने प्रथम व्याहता पति को कभी भूल नहीं पाती है। उन दोनों की फिर से मुलाकात एक लंबे अन्तराल के बाद होती है जब दोनों माता-पिता बन चुके होते हैं। वह नायक से यह कहकर कि –'अब इतने बेगाने हो गए हम।' कहकर रोने लगती है। दोनों एक-दूसरे को आप बीती सुनाते हैं, वह उसके बेटे को प्यार करती है, उबटन मलती है, जबकि राजकुमार उसकी बेटी को उठाता तक नहीं है। वह कहीं न कहीं स्वार्थी बन जाता है। वह उसे भगाकर ले जाने का प्रस्ताव रखता है तब वह कहती है –"औरत होते तो समझते मेरी मजबूरी! एक पौधे को कितनी बार उखाड़कर रोपेगा? उसकी भी जड़ें होती हैं कि नहीं?"[36] वह राजकुमार द्वारा उसकी बेटी का रिश्ता अंततः बहू के रूप में माँगने पर हँसकर इसका विरोध करती है –"फिर वही भूल? अरे, उमर --समय पर होगी तो होगी, आदमी को गाय-बैल समझने की

---

34. संजीव, 'अंतराल', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 227

35. वही, पृष्ठ संख्या – 228

36. वही, पृष्ठ संख्या – 233

चलन से तो छुटकारा पाइए ... और फिर इस बात की क्या गारण्टी है कि यह तुम्हारे जैसा नहीं होगा।"[37] अत: संजीव गाय-बैल की तरह बेटे-बेटियों की खरीद-बिक्री का विरोध करते हैं। उनके विवाह में उनकी इच्छाओं को प्राथमिकता देना चाहते हैं। विवाह का डोर माता-पिता के हाथ से निकालकर युवा बालक-बालिकाओं के हाथों में देना चाहते हैं, जिन्हें एक-दूसरे के साथ जीवन व्यतीत करना है। विशेषकर स्त्रियों को चयन का अधिकार मिलना चाहिए। उम्मीद है कि स्त्रियों और पुरुषों के लिए बराबर मापदंड का दंभ भरने वाला हमारा समाज कभी न कभी इस सच्चाई को स्वीकार करेगा।

सीपियों का खुलना

कथानायक प्रदीप एक पत्र में उप-संपादक है और नायिका ललिता जो एक दफ्तर में नौकर है, की असफल प्रेम कहानी है **'सीपियों का खुलना'**। दोनों के ऊपर अपने-अपने परिवार की जिम्मेदारियाँ हैं और दोनों परिवारों को यह विवाह मंजूर नहीं है। जहाँ एक ओर ललिता का परिवार अपनी कमाऊ बेटी नहीं खोना चाहता, वहीं प्रदीप के परिवार को भय है कि महानगरीय पढ़ी-लिखी बहू कहीं अलग घर न बसा ले। आज वर्तमान समाज में बहुत सारे ऐसे परिवार हैं जिनका खर्च उनकी बेटियाँ चलाती हैं, मगर माँ-बाप मजबूरी में स्वार्थ में अंधे हो जाते हैं और कन्या के विवाह तक से डरते हैं। वास्तव में वे उनका विवाह तो करना चाहते हैं पर अपने आर्थिक संकट के सामने पंगू हो जाते हैं। कहानी में कथानायक जमींदारों के खिलाफ हो रहे गुप्त अभियानों में भी भाग लेता है, जिससे वह कभी भी जेल जा सकता है। उसकी उप-संपादकीय भी कभी भी छिन सकती है। ऐसी स्थिति में प्रदीप के विवाह के प्रस्ताव को ललिता इस डर से ठुकरा देती है कि उसे अकेली दोनों परिवारों का बोझ उठाना पड़ेगा। इससे दुखी होकर प्रदीप जीवन पथ से भटक कर एक वेश्या के साथ रात गुजारता है। कुछ देर के लिए वह सोचता है कि क्या फर्क पड़ता है जैसे चार सालों की संगिनी वैसे चार घंटे की।

---

37. संजीव, 'अंतराल', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 234

परंतु बस स्टैंड तक आते-आते वह ग्लानि से भर जाता है –"नहीं, यह प्यर नहीं, प्यार नहीं है यह ! प्यार की भारशून्यता से उपजी लड़खड़ाहट है। और अब उसे अपने सारे बदन से बदबू आती-सी लगी। उन आँखों से अब हिकारत छलक रही थी, मैंने कहा था न, जब सीपियाँ खुलती हैं, तो ...।"[38] प्रदीप का प्यार यहाँ स्वार्थी और शारीरिक दिखता है। प्रेम का व्यवहारिक और यथार्थवाद चित्रण यहाँ दिखलाई पड़ता है।

जब नशा फटता है

सदियों से जाति व्यवस्था के कोढ़ से ग्रसित है हमारा भारतीय समाज। कहने को तो इसके निराकरण के बहुत बड़े-बड़े दावे किये जाते हैं, कानूने बनाई जाती हैं। परंतु आज भी दलित दूल्हे को घोड़े पर बैठने पर सवर्ण समाज उसे गोली मार देता है। मनुष्य को वर्णों में विभाजित करके शूद्र को सबसे छोटा करार दिया गया है। उससे समाज के सबसे गंदे कार्य जैसे मैला ढुलवाना, कुड़ा उठवाना करवाया जाता है। उसे अछूत घोषित करके रखा गया है। इनके उपर हिंदू धर्म का नशा चढ़ाकर रखा गया है जबकि मंदिरों में इनका प्रवेश निषेध है। और हिंदू धर्म का नशा जब फटता है, तब मेहतर समाज को हिंदू धर्म का छुआछूत, अत्याचारी और अव्यभिचारी वाला सच समझ में आता है और वे हिंदू धर्म छोड़ने का निर्णय करते हैं। परंतु समस्या यह है कि वे जाएँ कहाँ? ईसाई धर्म में जहाँ एक ओर पढ़ने-लिखने का अवसर है, वहीं दूसरी ओर इस्लाम में एक साथ नमाज पढ़ने की छूट। यूरोप के सबसे लोकप्रिय समाजशास्त्री जार्ज सिमेल धर्म परिवर्तन करके यहूदी से इसाई बने, परन्तु –"सिमेल धर्म परिवर्तन के बावजूद यहूदी माने जाते थे, इसीलिए जर्मन अकादमिक संरचना में वे विधिवत स्वीकारे नहीं गए।"[39] हमने जगदीशचंद्र के उपन्यास **'धरती धन न अपना'** में देखा है कि

---

38. संजीव, 'सीपियों का खुलना', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 263

39. हुसैन मुजतबा, समाजशास्त्रीय विचार, प्रथम संस्करण : 2010, पुनर्मुद्रित : 2012, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 166

मोची धर्म बदलकर ईसाई बनता है परंतु ईसाइयों के नजर में रहता है वह चमार ही। इसलिए जाति के मामले में वहाँ भी वही स्थिति है, जो यहाँ है। कुछ लोग कहते हैं कि बाबा साहब ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था इसलिए हमें भी वहीं जाना चाहिए।

अंततः अखबार में छपता है कि बैजूपुरा गाँव के 113 हिंदू इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेते हैं। हिंदू बचाओ समीति के लोग मेहतरों को समझाकर फिर से हिंदू धर्म में वापस लाना चाहते हैं। मेहतर जाति के लोगों को यह समझ में आ जाता है कि न तो हिंदू धर्म में उन्हें ब्राह्मण या क्षत्रिय जाति मिल सकती है और न ही इस्लाम में शेख या पठान की। वे समझ चुके हैं कि धर्म बदलने से हमारे संस्कार नहीं बदलते हैं। क्योंकि यह उपर से ओढ़ी हुई चीज नहीं है। और तब जाकर मेहतर समाज का नशा फटता है –"तब का रह गया? हमरा खातिर जैसे एक सूअरबाड़ा, वइसे दूसरा। हम न हिंदू है, न मुसलमान, हम आदमी की बिरादरी से बाहेर हैं।"[40] अपने सर पर मैला ढोने वाले मेहतर अपने सामाजिक और आर्थिक न्याय के कारण हड़ताल करते हैं। शहर में चारों तरफ मैले का ढेर फैल जाता है तो समझाने-बुझाने वाले लोग यह कहना शुरू करते हैं कि लातों के देवता बातों से नहीं मानते। मारो सालों को। मारने में भी छू जाने के डर, पत्थर का प्रयोग करते हैं, कई लोग घायल होते हैं और खेदु अस्पताल में दम तोड़ता है।

इसलिए जिस प्रकार सेफ्टी टैंक में उतरते वक्त मेहतर को शराब पिलाकर रखा जाता है ताकि उसे गंध का एहसास न हो, उसी प्रकार समाज की तथाकथित दलित जातियों को हिंदू धर्म के नाम पर –*'जाति-पाति पुछे नहीं कोई, हरि का भजे सो हरि का होई।'* के नाम पर नशा में रखा जाता है। जिस दिन दलित समाज का यह नशा फटेगा उस दिन देश में सामाजिक और न्यायिक क्रांति आएगी।

भूमिका

गुण्डा तंत्र हमारे देश की राजनीति का प्रमुख आधार है। वोटर को धमकाने, भय दिखाने,

---

40. संजीव, 'जब नशा फटता है', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 279

बम-गोली चलाकर लोगों में दहशत पैदा करने, बुथ कैप्चरिंग से लेकर राजनीतिक हत्याएँ तक इन्हीं महानुभवों द्वारा संपन्न करायी जाती है। राजनीतिक पार्टियाँ इनकी पोशक होती हैं। चुनाव का समय इनके लिए उत्सव का समय होता है। जब कानून की धज्जियाँ उड़ाते हुए जेल में बंद अपराधी भी राजनीतिक पार्टियों द्वारा छुड़ा लिए जाते हैं और इलाके में गस्त लगाना शुरू कर देते हैं। ये स्वार्थी राजनेता कुछ नासमझ नौजवानों को बहला-फुसला कर, लालच दिखलाकर उनसे सारे राजनीतिक कुकर्म करवाते हैं। पहले तो इन गुण्डों की मदद से गरीब लोगों की घरों में आग लगवाते हैं फिर जनता की सहानुभूति पाने के लिए वहाँ जाकर नेता रीलिफ बाँटते हैं। रुपयों के लालच में या धर्म के आड़ में ही सही ये नौजवान सही-गलत का निर्णय नहीं कर पाते हैं। वे ये नहीं समझते कि किसी भी मुसीबत में पड़ने पर ये नेता उनसे पल्ला झाड़ लेंगे। और उन्हें अपना आदमी मानने से ही इन्कार कर देंगे। **'भूमिका'** कहानी में इसी स्वार्थपरक राजनीति की पोल संजीव खोलते हैं। वास्तव में ये राजनेता पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली होते हैं। कोई भी पार्टी जीते, भला हमेशा पूँजीपतियों का होता है। गुंडे नेता के सान्निध्य में रहकर खुद को भी नेता समझने लगते हैं –"गर बिला टिकट रैली के नाम पर फोकट में शहर घूम आना, पारटी की धौंस जमाकर ट्रक वालों, दुकानदारों, दारूखानों, रंडियों से पैसे झाड़ लाना, लाठी, बल्लम, छुरा, बम की बदौलत बुथ कैप्चर कर एलेक्शन जीत लेना और फिर इन्हीं के खिलाफ लिच्चर पोंक आना राजनीति है तो हम साले किस लीडर से कम हैं?"[41] अपने व्यक्तिगत कार्य को भी सरकारी खर्चे पर करना नेता अपना धर्म समझता है। नेता कभी नहीं चाहेंगे कि आम जनता शिक्षित हो क्योंकि जनता जब शिक्षित हो जायेगी तो उनके पीछे झंडा-एँडा लेकर घूमने वाला कोई नहीं मिलेगा। जनता अपने अधिकारों की माँग करने लगेगी इसलिए इन्हें धर्म का अफीम खिलाकर नशे में रखा जाता है।

गुण्डों द्वारा लगायी गई आग में आदिवासियों के बीच काम करने आयी महिला बच्चे को बचाते-बचाते खुद अपनी आँख खो बैठती है। वह अलग-अलग नेताओं द्वारा पोषित गुण्डों को

---

41. संजीव, 'भूमिका', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 283

संबोधित करते हुए कहती है कि रामायण का सबसे भयंकर पात्र रावण नहीं हनुमान है – "अकूत ताकत है, हनुमान के पास, लेकिन जिसे अपनी ताकत का पता नहीं ...और उसका इस्तेमाल क्या हुआ? ...जिंदगी भर राजा रामचंद्र की गुलामी करता रहा, जिन्होंने उसे रावण और मेघनाद के खिलाफ इस्तेमाल किया और रावण-मेघनाद का कसूर ...? ...दुश्मनी रावण से हो सकती है, चलो माना मगर लंका के साधारण लोगों ने उनका क्या बिगाड़ा था जो लंका में आग लगा दी और बेकसूर लोग –परिन्दे और जानवर तक जल मरे, बच्चों तक को नहीं बख्शा?"[42]

अतः कथाकार गुमराह नौजवानों से यह अपील करता है कि वह अपने युवा शक्ति को पहचाने और सही-गलत का निर्णय स्वयं करके अपनी सारी ऊर्जा देशहित और सही कार्यों में लगायें। नेताओं के बहकावे में आकर कुकर्म करने से बचें। पढ़-लिख कर एक सच्चा नागरिक बनने का प्रयास करे। तब कोई नेता तुम्हें बहला नहीं पाएगा।

चूतिया बना रहे हो?

हमारा देश एक जाति प्रधान देश है और हमारी राजनीति भी इससे अछूती नहीं है। कहने को तो हम दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में रहते हैं जहाँ सब कुछ जाति धर्म निर्विशेष है। परंतु सच्चाई यह है कि सभी राजनीतिक पार्टियाँ किसी निश्चित क्षेत्र से उस उम्मीदवार को चुनावी मैदान में उतारती हैं जिनकी जाति की आबादी उस क्षेत्र में बहुसंख्यक हो। चुनाव के समय उस क्षेत्र का पूरा जातिगत समीकरण नेताओं के पास मौजूद रहता है। हमारे यहाँ सरकारी सुविधाएँ –जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, अनुदान, टेंडर, नौकरी इत्यादि का वितरण भी जाति आधारित होता है। दलितों और आदिवासियों की कितनी नौकरियाँ –**'स्यूटेबल कंडीडेट नॉट फाउंड'** कहकर सत्तासीन बड़ी जातियों को दे दिया जाता है। प्रस्तुत कहानी में राजनेताओं की स्वार्थी, जाति-पाति आधारित और दोगली नीति का पर्दाफाश किया गया है। वे चुनाव जीतने के लिए लोगों

---

42. संजीव, 'भूमिका', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 289

को जातियों में बाँटते हैं, दंगा करवाते हैं, बूथ कैप्चरिंग करवाते हैं, लोगों में दहशत का माहौल पैदा करते हैं यानी किसी भी तिकड़म से उन्हें चुनाव जीतना है।

मुख्यमंत्री के चाल से बाज आकर आलाकमान उन्हें पद से च्यूत करते हुए सूर्यभान सिंह को अगला मुख्यमंत्री चुनते हैं। कथाकार ने व्यंग्य किया है कि आलाकमान के यहाँ सेलेक्शन हुआ है, एलेक्शन छः महीने बाद होगा। जैसे ठेकेदार के बिल पहले पास होते हैं, कागजी कार्यवायी बाद तक होती रहती है। सूर्यभान सिंह को उस क्षेत्र से टिकट दिया जाता है जहाँ सिंह जातियों की आबादी अधिक होती है। पदच्यूत होकर मनबोध सिंह रणनीति बनाता है, वह विरोधी दल से मिल जाता है। और विरोधी दल का उम्मीदवार उदयभान सिंह को बनाया जाता है। ताकि सिंह जातियों के वोट आपस में बँट जायें और हाईकमान का मुँह काला हो। आनन-फानन में सत्तासीन पार्टी की एक और मिटिंग बुलाई जाती है और उस क्षेत्र में सिंहों के बाद जिस जाति की जनसंख्या ज्यादा थी, उसी जाति का उम्मीदवार किसान पार्टी की तरफ से खड़ा कर दिया जाता है ताकि वोटो के काटा-काटी में ये जीत जायें। सारे उम्मीदवार खड़े किये जाते हैं जाति के आधार पर। फिर भी हमारे नेता चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं कि चुनाव में –"हमारा निर्णय जाति-पाँति के आधार पर नहीं होता। हमारे यहाँ पैसों पर निर्णय नहीं होता। हमारे यहाँ लाठी-गोली के डर से भी निर्णय नहीं होता।"[43]

सच्चाई यह है कि आज किसी भी नेता को देश की चिंता नहीं है। सभी सत्ता के लिए अपना उल्लू सीधा करने में लगे हुए हैं। जनता को लूटना और खुद सपरिवार फलना-फुलना इन्होंने अपना अधिकार मान लिया है। संजीव ने शराफत का मुखौटा लगाकर घूमने वाले राजनेताओं का मुखौटा उतार दिया है।

फुटबॉल

आज हमारे समाज में बहुत से प्रतिभा संपन्न युवा-युवतियाँ रिश्वत और सिफारिश के

---

43. संजीव, 'चुतिया बना रहे हो?', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 298

अभाव में नौकरी के लिए दर-दर भटक रहे हैं। हमने प्रतिभा संपन्न बेरोजगारों की एक फौज खड़ी कर ली है। उनकी ऊर्जा का बेकार जाया होना सचमुच हमारे राष्ट्र हित में नहीं है। भ्रष्टाचार धीरे-धीरे हमारे राष्ट्र को खोखला बना रहा है। अधिकांश प्रतियोगिता की परीक्षाओं के प्रश्न-पत्र आउट हो जा रहे हैं। यहाँ से बचे तो साक्षात्कार में भेदभाव का शिकार हुए बिना नहीं रह सकते। और जिनके पास सिफारिश और रिश्वत का ताकत है वे बड़े-बड़े पदों को हथिया ले रहे हैं। कहानी में सोमनाथ चटर्जी एक ऐसा ही पात्र है जो स्कूली शिक्षा भी कभी कॉपी करके, तो कभी दूसरे की उत्तर पत्रिका लेकर, तो कभी पैसे देकर पास करता है। कारखाने की नौकरी और पदोन्नति भी वह रिश्वत देकर प्राप्त करता है। वह फुटबॉल के कोटे से नौकरी में आया था। सोमू के चयन के संबंध में कथाकार का व्यंग्य है –"खेल फिर शुरू हुआ। इस बार पहले जैसी न आक्रामकता थी, न गति, मगर आश्चर्य इस बात का कि बॉल कहीं होता, लुढ़ककर चला जाता सोमू के पास। गोया उसके पाँव नहीं चुंबक हों।"[44] क्योंकि उसने खेल में रिश्वत के बल पर पक्ष और विपक्ष दोनों को मिला लिया था। सिर्फ अतुल अकेला संघर्ष करता रहा। इसलिए तो जब कहीं मैच होता उसे फ्लू, डायरिया, डिसेंट्री कुछ न कुछ जरूर हो जाता। आज वही सोमू पर्सनल मैनेजर है, मजदूरों का शोषण करता है, नयी भर्ती के लिए पंद्रह हजार का रिश्वत मांगता है। सत्ता के साख पर बैठे ऐसे उल्लुओं का भेद खोलना ही संजीव का परम उद्देश्य है। वर्षों से चली आ रही अफ़सरशाही परंपरा पर व्यंग्य है। अशोक के साथ अन्य युवकों द्वारा सोमनाथ के दफ्तर पर हमला बोलना एक आशा की किरण जगाती है कि आज का युवक शोषण, अत्याचार और अन्याय का विरोध करते हुए अपने अधिकारों के लिए आवाज उठायेगा।

दुनिया की सबसे हसीन औरत (कहानी संग्रह)

ऑपरेशन जोनाकी

प्रस्तुत कहानी संजीव के चौथे कहानी संग्रह **'दुनिया की सबसे हसीन औरत'** जिसका

---

44. संजीव, 'फुटबॉल', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 268

प्रकाशन 1993 में यात्री प्रकाशन द्वारा हुआ, से ली गई है। सत्ता के जुल्म के खिलाफ आवाज उठाने वाले संवेदनशील नक्सली युवक, सीधे-साधे आदिवासी और उनके खिलाफ किये जाने वाले शासकीय हिंसा की दास्तान है यह कहानी। आज भी हमारे देश में नक्सलवादी समस्या है। आये दिन हमलोग उनके हिंसा की दास्तान इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया के सहारे देखते-सुनते हैं। छत्तीसगढ़ दाँतेवाड़ा में कई अर्द्धसैनिक बलों की गाड़ियाँ इन नक्सलियों के द्वारा उड़ा दी जाती हैं। पश्चिम बंगाल में बहुत हद तक इन नक्सलियों को बंदूक छोड़कर मुख्य धारा में शामिल किया गया है। परंतु कहानी को पढ़ने के बाद कहीं भी नक्सलियों से नफरत या घृणा पैदा नहीं होती बल्कि उल्टे उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है। अब समय आ गया है कि हमें स्वच्छंद हृदय से इन नक्सलियों के विभिन्न समस्याओं का समाधान करते हुए उन्हें समाज के मुख्य धारा में जोड़ने का प्रयास करना होगा।

कहानी में सत्येन नामक युवक सभी आदिवासियों को संगठित कर उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागृत करता है। अब आदिवासी जोतदार, पुलिस और वन विभाग के भ्रष्टाचार का विरोध करते हैं। इलाके के प्रभुता संपन्न लोग और पुलिस उन्हें नक्सलाइड घोषित करके उन्हें कुचलने का प्रोग्राम बनाती है जिसका नाम दिया जाता है –**'ऑपरेशन जोनाकी'**। अनिमेष दा इस आपरेशन के प्रमुख पुलिस अफ़सर हैं जिनके बेटे सौरभ का बचपन में ही अपहरण हो गया था। कहानी यहाँ से स्मृतियों के आधार पर चलती है और वे बतलाते हैं कि उनके बच्चे का कसूर सिर्फ इतना था कि उसने एक ईमानदार कांग्रेसी नेता के हत्यारे मंत्री को पहचान लिया था।

फिर ग्यारह वर्ष बाद चिन्मय नामक एक नक्सली युवक को सरकारी आदेश पर अपने घर में रखते हैं। उसके तर्कों का वह कायल हो जाते हैं और उसके प्रति उनमें वात्सल्य उमड़ता है। चिन्मय हमेशा उन्हें बहस में परास्त कर देता है। वह अपने आप को देशद्रोही नहीं मानता बल्कि सरकार के कोपभाजन का शिकार मानता है। वह मानता है कि देश सरकार से बहुत बड़ी चीज है। वह मानता है कि उसका यह आंदोलन महाजन, सूदखोर, जोतदार और जमींदारों के अत्याचारों के खिलाफ है। बाद में इस चिन्मय को भी पुलिस वाले उसके घर से ले जाते हैं।

परंतु अब अनिमेष दा ने असामाजिक तत्वों की सही पहचान कर ली है। वह ऑपरेशन जोनाकी पर जाने से इन्कार करते हुए अपने अफ़सर से कहता है –"आख़िर पुलिस अफ़सर भी तो देश का एक नागरिक होता है और नागरिक होने के नाते यह सवाल करने का हक तो मुझे है कि यह तत्परता उस समय क्यों नहीं दिखाई गई, जब सरकार की तय मजदूरी माँगने पर इन्हें पीटा जा रहा था, जब नए-नए एक्टों की आड़ लेकर ठेकेदारों के ख़रीदे हुए वन-विभाग वाले इनके परंपरागत जीने के अधिकार, इनके जंगल से इन्हें वंचित कर रहे थे, जब इनकी अर्ज़ियों पर अधिकारी कान में तेल डाले पड़े थे।"[45] लोग अनिमेष दा को भावुक कहते हैं परंतु वे कहते हैं –"भावुक ही होता तो पत्नी की तरह पागल होकर मर नहीं जाता अब तक? बेटा मर-मर कर भी ज़िंदा है, और बेहया-सा लाश घसीट रहा हूँ। आपको शायद पता नहीं है... मेरा सौरभ अगर जिंदा होता तो ग्यारह साल पहले चिन्मय जैसा होता... और आज सत्येन जैसा।"[46]

इस प्रकार ऐसे प्रतिभावान युवकों द्वारा नक्सलीपंथ चुनने और शासकीय हिंसा द्वारा उनकी हत्या को एक तत्कालिक त्रासदी मानते हैं संजीव। अब समय है कि हम युवा ऊर्जा का देशहित में प्रयोग करें। नवयुवकों को नक्सलपंथ की ओर भटकने से रोकने की जिम्मेदारी हमारी सरकारों की ही है। अच्छी शिक्षा और रोजगार के साधन उपलब्ध कराये जायें। गरीबों, दलितों और आदिवासियों के लिए विभिन्न प्रकल्प चलाकर उन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जाए।

घर चलो दुलारी बाई!

जमीन, संपत्ति का न होना ही सिर्फ एक समस्या नहीं है बल्कि इसका ज्यादा होना भी एक समस्या है। **'घर चलो दुलारी बाई!'** की दुलारी बाई एक ऐसी ही पात्रा हैं जिनके मायके

---

45. संजीव, 'ऑपरेशन जोनाकी', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 309

46. वही, पृष्ठ संख्या – 310

तथा ससुराल में बहुत जमीन-जायदाद हैं। परंतु पति की मृत्यु के उपरांत उनकी स्थिति शूद्रों के समान हो जाती है। संपत्ति के लालच में देवर और भसुर की कुदृष्टि हमेशा उस पर बनी रहती है। उसके बेटे की हत्या जहर देकर कर दी जाती है। जब वह मास्टर मुस्ताक से मदद मांगना चाहती है तो परिवार और समाज के लोग उसके और मास्टर मुस्ताक के अवैध संबंध का अफवाह उड़ा देते हैं। मुस्ताक के विवाह के प्रस्ताव को वह ठुकरा देती है। उसे चाह है तो सिर्फ अपने पुत्र के हत्यारों को सजा दिलवाने की परंतु उसमें भी अपराधी बरी कर दिये जाते हैं –"एक धमाका यह कि तुम्हारे पुत्र के हत्यारे बाइज्ज़त बरी कर दिये गए और दूसरा धमाका यह कि तुम्हारे मायके और ससुराल के पट्टीवारों में तुम्हारी ज़मीन को लेकर अलिखित समझौता हो गया जिसके अनुसार मायके की तुम्हारी ज़मीन पर मायके वालों का, और ससुराल की ज़मीन पर ससुराल वालों का हक़ मान लिया गया।"[47] परंतु वह हार नहीं मानती है। न्याय के लिए लड़ती है। मजूरी-धतूरी कर के एक-एक पैसा जोड़कर वकीलों को देती है। परंतु न्याय बिक चुका है, अदालत में उसे मृत घोषित कर दिया जाता है।

दुनिया की सबसे हसीन औरत

महानगरों के लोकल ट्रेनों में प्रतिदिन सब्जियाँ ले जाती हुई महिलाओं और उनके साथ घटित नाना प्रकार की घटनाओं से हम वाकिफ हैं। यद्यपि हमारा तथाकथित सभ्य समाज यह भली-भाँति समझता है कि यदि वे ग्रामीण सुदूर क्षेत्र से सब्जियाँ न लायें तो हम शहरी लोग खायेंगे क्या? फिर भी इनके साथ दुर्व्यव्यवहार होता है। आम आदमी से लेकर टी.टी. और रेलवे पुलिस तक इनका शोषण करती है, इनसे अवैध वसूली करती है। हमारा सभ्य समाज कभी सब्जियाँ कचर देता है, कभी उस पर बैठ जाता है, तो कभी उसको रखने को लेकर सब्जिवालियों को डाँटने और गालियाँ बकने लगता है। प्रस्तुत कहानी में एक आदिवासी औरत सब्जियों का एक गट्ठर लेकर ट्रेन में उठती है, उसके पास वैध टिकट है, जबकि उसी ट्रेन में दो शरीफ़ज़ादी शिक्षिकाएँ भी बिना टिकट सफर करती हैं। फिर भी टी.टी. रेलवे पुलिस

---

47. संजीव, 'घर चलो दुलारीबाई!', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 365

और शिक्षिकाएँ मिलकर उस सब्जिवाली महिला को हिकारत भरी दृष्टि से देखते हुए उसके साथ घृणित और अमानवीय व्यवहार करती है। उसे बाजारू कहती हैं। टिकट रहने के बावजूद टी.टी. उससे दस रुपया मांगता है जबकि बिना टिकट शिक्षिकाओं को पाँच-पाँच रुपये में सफर करने देता है। कोई उसकी मूली निकाल लेता है, तो कोई उसको बैठने भी नहीं देता है। इतनी घृणा, अपमान और धमकियों के कारण वह रोने लगती है –"रो रहा है हम अपन नसीब पे। आज हमरा साथ कोई मरद होता, पैसा होता, रोब होता तो पाँच-दस थमा के हमहू इज्जतदार बनल रहता। ऐसे का इज्जत है हमरा? हम बजारू है।"[48]

कथावाचक उस आदिवासी महिला के साथ खड़ा होता है और एक साथ टी.टी. शरीफ़ज़ादियों और पुलिस जवान से भीड़ जाता है। वह उस आदिवासी औरत को उसके चेहरे पर गुदे तीन दाग का महत्व बताते हुए रानी सिनगी दाई और सेनापति की बेटी कैली दाई की वीरता की कथा सुनाता है कि किस प्रकार कुछ बहादुर स्त्रियों ने मिलकर तीन बार मुगलों को परास्त किया था। चौथी बार मुगलों ने कुछ स्त्रियों को पकड़ कर अपने तीन पराजय का बदला लेने के लिए तीन बार उनके चेहरों को दाग दिया है। परंतु ओराँव महिलाएँ इसे भी ृंगार के रूप में अपना लेती हैं। इस प्रकार कथावाचक उसके अंदर आत्मसम्मान और जुल्म के खिलाफत का साहस भरता है। वह कथावाचक के प्रति कृतज्ञता से भर उठती है। अब उसका चेहरा आत्मविश्वास, जिजीविषा, कृतज्ञता, स्नेह और सौहार्द्र में खिल उठता है –"ओह! वह नज़र थी या कुदरत का बेमिसाल तोहफ़ा, जैसे वे आँखे अभी-अभी पैदा हुई थीं। पलकें अभी भी आँसू तोल रही थीं, मगर गर्दन खिली हुई, कोये सिंदूरी, जैसे घने कोहरे और अँधेरे को चीरते हुए सूरज की ताज़ा किरन फूटी आ रही हो।"[49] वह **'दुनिया की सबसे हसीन औरत'** लग रही थी। यहाँ सौंदर्य की परिभाषा उसके रंग, रूप, उम्र, नयन, नक्श से नहीं बल्कि आंतरिक है।

---

48. संजीव, 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण :2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 40

49. वही, पृष्ठ संख्या – 42

प्रेत-मुक्ति (कहानी संग्रह)

तिरबेनी का तड़बन्ना

प्रस्तुत कहानी संजीव के पाँचवा कहानी संग्रह **'प्रेत-मुक्ति'** से लिया गया है जिसका प्रकाशन 1996 में दिशा प्रकाशन द्वारा हुआ था। कहानी में एक ताड़ी बेचने वाले व्यक्ति तिरबेनी के जीवन व्यथा को कथा का आधार बनया गया है। तड़बन्ने के एवज में चन्नर सिंह तिरबेनी और उसकी पत्नी को गुलाम बनाकर रखना चाहता है। आर्थिक तंगी, सामंतवादी शोषण और जातीय विषमता से तंग आकर तिरबेनी बहू गाँव छोड़ देना चाहती है पर तिरबेनी ही तड़बन्ना का मोह नहीं त्याग पाता है। परशुरामपुर गाँव के बड़े-बूढ़े, युवा, गरीब-अमीर, ऊँच-नीच सभी ताड़ी के नशे के वश में हैं। तिरबेनी जान जोखिम में डालकर ताड़ी उतारता है। इनके पास मजदूरी का दूसरा कोई विकल्प नहीं है। सरकार द्वारा गरीबों, भूमिहीनों को प्रदत्त की जाने वाली सुविधायें जैसे – जमीन, गाय, भैंस, रिक्शा और इक्का इत्यादि ऊँची जातिवालों के पास चली जाती है। गाँव का प्रधान, पटवारी, सरपंच सब मिलकर इनका शोषण करते हैं अत: गाँव में इन शोषकों का विरोध करने के लिए एक पार्टी तैयार होती है। तिरबेनी तड़बन्ने पर अपना अधिकार यह कहकर ठोंक देता है कि तड़बन्ने की जमीन ग्राम-समाज की है, किसी चन्नर सिंह की नहीं। इस प्रकार गुलजार सिंह के नेतृत्व में नई पार्टी यह ऐलान करती है कि जमीन उसका जो जोते-बोये। यह सर्वविदित है कि भारत में भूमि का असमान वितरण और वर्ग भेदी खाई ही इस सामाजिक कलह के मूल में है। किसी के पास दो-दो सौ बीघे जमीनें हैं तो किसी के पास दो छटाक भी नहीं। वास्तव में इन शोषकों की संख्या कम है, पर ये सामर्थ्यवान लोग हैं। पैसे के बल पर ये पूरे गाँव को रौंदते रहते हैं। और सामर्थ्यहीनों का वर्ग बहुसंख्यक है परंतु अर्थहीनता, अंधविश्वास, नियतिवादी और रूढ़िवादी परंपराओं से ग्रसित होने क कारण ये आगे नहीं बढ़ पाते हैं। गुलजार सिंह को ऊँची जाति की सभा में तोड़ने की बहुत कोशिश की जाती है। परंतु वे मानते हैं कि जातियाँ दो ही हैं शोषक और शोषित, अमीर और गरीब। अत: कहानी के अंत में एक आश की किरण दिखाई पड़ती है जब तिरबेनी ताड़ पर उल्टा लटक जाता है। सभी चुपचाप तमाशा देखते हैं परंतु तिरबेनी बहू के ललकारने पर सभी बांस काट कर लाते हैं और तिरबेनी को उतारते हैं। तिरबेनी बच

जाता है।

अतः संजीव का यह शोषकों के खिलाफ संपूर्ण क्रांति का सपना है। यह क्रांति है पहले तो वर्गभेद के खिलाफ क्योंकि बिना वर्ग भेद को समाप्त किये अमीरी-गरीबी की खाई को नहीं भरा जा सकता, आर्थिक विषमता को दूर नहीं किया जा सकता है।

मैं चोर हूँ, मुझ पर थूको

इस कहानी में एक डॉक्यूमेंटरी फिल्म बनाने की चर्चा है जिसमें ऊपर से नीचे तक देश को लूटने वाले सभी बड़े-छोटे भ्रष्टाचारी और चोरों की चर्चा की गई है। हबीब मियां के बस्ती के सिलतोड़वा कहानी के केंद्र बिंदु हैं। ये हमेशा रेलवे का वागन तोड़ते हैं फिर भी इनकी जिंदगी विपन्नता से भरी हुई है। कथाकार द्वारा हबीब मियां से इस बावत पूछने से पता चलता है कि सिर्फ सिलतोड़ी करके चोरी वे लोग करते हैं, परंतु चोरी की संपत्ति के कई हिस्सेदार हैं। सेठ से लेकर रेलवे पुलिस तक, उनको तो हिस्से की सिर्फ छाँछ ही मिल पाती है। भ्रष्टाचार की जड़ हमारे देश में कहाँ तक फैली है इसका अंदाजा लगाना मुश्किल है। यह धीरे-धीरे देश को दीमक की तरह चाट रहा है। हबीब मिया की बस्ती के माध्यम से कई शहरी बस्तियों का यथार्थ चित्र उभर कर आया है। इस बस्ती पर हवलदार कुंदन सिंह का वर्चस्व है। वह इन लोगों को वागन की चोरी के लिए प्रेरित करता है, चोरी न करने पर उल्टे इन्हें धमकाता है, झूठा इल्जाम लगाता है अर्थात रक्षक ही भक्षक बना हुआ है। महानगरीय समाज में ऐसी गंदगी, बदबू और सिलन भरी कई बस्तियाँ हैं जहाँ की युवा शक्ति पेट की आग बुझाने के लिए चोरी-डकैती करने को मजबूर हैं। बस्तियों को लेकर हमेशा राजनीति होती है, परंतु उसके उत्थान का प्रयास कोई नहीं करता है। तभी तो हबीब मियां व्यथा व्यक्त करते हैं –"हम साले यहीं पड़े-पड़े बुढ़ा गए, एक लमहे को भी ये ख़्याल न आया कि ये बस्ती इतनी ऊँची चीज़ है कि लोग देखने भी आ सकते हैं लेकिन वाकई सही फरमाया आपने। ...देश जो है, वो इस यार्ड तक आते-आते ख़त्म हो जाता है, मैं जिस आलीशान महल में रहता हूँ, वह डिब्बा रेल के रजिस्टर से जिस तरह गुम है, उसी तरह यह बस्ती देश के रजिस्टर से। होंगे कहीं परधानमंतरी वगैरा, लेकिन हम तो बस हवलदार कुन्दनसिंह को जानते हैं। इन्हीं के रहम-ओ-

करम पे आबाद हैं।"[50]

अतः कथाकार जरूरत महसूस कर रहा है कि इन क्षेत्रों में शिक्षा और रोजगार के उचित अवसर उपलब्ध करवाया जाये ताकि वे स्वावलंबी बन सकें, समाज की मुख्य धारा के साथ सरोकार बैठा सकें।

प्रेत-मुक्ति

प्रस्तुत कहानी मेहनतकश वनवासियों पर सामंती अत्याचार और उसके प्रतिरोध की दास्तान है। नैरेटर डॉक्टर का तबादला एक सुदूर पिछड़े इलाके में होता है जहाँ वे गरीबों, मजदूरों, पिछड़ों की सेवा करना चाहते हैं। परंतु वहाँ उनकी मुलाकात मुखिया जी और सुरेंदर जी जैसे शैतानों से होती है, जो सामंतवादी व्यवस्था के साक्षात् नग्न और भयावह रूप हैं। अस्पताल, थाना, कचहरी हर जगह उनकी मनमानी चलती है। हर दुल्हन को पहले उनके पास से होकर गुजरनी पड़ती है। सिर्फ सरकारी संपत्ति पर नहीं बल्कि वे प्राकृतिक संपत्ति पर भी अपना अधिकार समझते हैं। नदी पर बाँध बनाकर पानी को रोक लेते हैं। कहानी का नायक जगेसर मुखिया के इस जुल्म का विरोध करता है, वह मुखिया के बाँध को काट देता है और गाँव वालों को पानी उपलब्ध करवा देता है। जगेसर का पिता रामचरितर भी बाँध काटते रहे थे तथा बाघ के शिकार के लिए बाँधे जाने वाले पाड़ा को खोल देते हैं। आखिरकार सुरेंदर पाड़ा की जगह रामचरितर को ही बाँध देते हैं जिन्हें बाघ खा जाता है। इतना जुल्म सहने को मजबूर हैं ये लोग। मुखिया के शोषण से इनका जीवन दयनीय हो गया है तभी तो सर्वेक्षण दल के सामने मुखिया जगेसर को पेश नहीं होने देना चाहता है। सब कहते हैं कि जगेसर के ऊपर उसके बाप का भूत है। डॉक्टर उसके इलाज के बहाने उसके जीवन के तह में जाते हैं तो पता चलता है कि वह शोषण और उत्पीड़न का मारा हुआ है। कहानी के अंत में सुरेंदर की हत्या हो जाती है और बाँध काट दिया जाता है। बुधन डॉक्टर को बताता है कि प्रेत-मुक्ति हो गई।

---

50. संजीव, 'मैं चोर हूँ, मुझ पर थूको', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 80

प्रेरणास्त्रोत और अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह)

प्रेरणास्त्रोत

प्रस्तुत कहानी संजीव के छठी कहानी संग्रह **'प्रेरणोस्त्रोत और अन्य कहानियाँ'** की प्रथम कहानी है। इस संग्रह का प्रकाशन किताबघर द्वारा 1995 में हुआ था। इससे पहले के कहानी संग्रहों में संजीव के नारी पात्र सहनशील हैं या विरोध के नाम पर सिर्फ कह देती हैं। परंतु प्रस्तुत कहानी की नायिका मुक्तिकामी और आंदोलन धर्मी है। यहाँ नारी अपने स्वाभिमान और अधिकार के लिए संघर्ष करती है। वर्षों पहले कथाकार ने जंगली बहू के ऊपर एक कहानी लिखी थी जो काफी प्रसिद्ध हुई थी। आज जब कथाकार सत्रह वर्ष बाद गाँव पहुँचता है तो उसे जंगली बहू दिख जाती है। कथाकार को यह विश्वास नहीं होता कि कुछ यथार्थ और कल्पना के संयोग से लिखा गया यह पात्र वास्तविक जीवन में इतना जुझारू हो जायेगी। वह हरिजन और महिला कोटे से पंचायत का चुनाव जीतती है। पानी के लिए डी.एम. कार्यालय के सामने आंदोलन करती है। वह सवर्ण समाज की चालाकी को बखूबी समझती है –"खेत तुम हथिया लो, रोजी-रोटी तुम बटोर लो, तेल-पानी तुम सोख लो, चीनी और खाद तुम भकोस लो। अघा जाओ तो बिलैक कर दो। इसीलिए ज्यादा चीनी, ज्यादा खाद, ज्यादा कपड़ा चाहिए तुम्हें।"[51] स्थिति यह है कि वास्तविक जंगली बहू कहानी की जंगली बहू में परिणित होती जाती है और कभी वास्तविक जंगली बहू तथा कभी लेखक दोनों एक-दूसरे के लिए प्रेरणास्त्रोत बन जाते हैं। जब जंगली बहू पर प्रधान द्वारा हमला होता है, और दूसरी ओर लेखक के ऊपर हमला होता है तो लेखक अस्पताल पहुँच जाता है, तब अर्द्ध निद्रा, अर्द्ध जागरण की स्थिति में शायद, शायद स्वप्न में, शायद हकीकत में जंगली बहू आकर उनसे मिलती है। तब लेखक कहता है –"पता नहीं किसने किसको जन्म दिया, मैंने उसे या उसने मुझे।"[52] अतः

---

51. संजीव, 'प्रेरणास्त्रोत', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण :2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 165

52. वही, पृष्ठ संख्या – 168

लेखक यथार्थवादी समाज से एक चरित्र को उठाकर मानवतावादी दृष्टिकोण से उसे गढ़ता है। यह चरित्र वास्तविक जीवन में समस्याओं का इस प्रकार मुकाबला करता है कि लेखक और चरित्र दोनों एक-दूसरे के लिए प्रेरणास्रोत बन जाते हैं।

क़दर

यह एक बंधुआ मजदूर की कहानी है जिसकी आकांक्षा – मान-सम्मान, इज्जत, कदर पाने की है। कहानी का नायक बोदा एक बहुत ही कमजोर तबके का है। उसके माँ-पिता गुजर चुके हैं तथा पत्नी छोड़कर चली गई है। अब उसका एकमात्र परिचय सूदखोर रामबली राय का बंधुआ मजदूर के रूप में है। अपने मालिक के लिए वसूली करना, कोइला लाना, गेहूँ पिसवाना, गाय-भैंसों का सानी-पानी करना, यही उसका प्रमुख कार्य है। वह एक पाव दूध के लिए तरसता है, जबकि शिवजी के ऊपर रोज एक लोटा दूध रामबली चढ़ाता है, जिसे कुत्ते पीते हैं। जोगी का मान-सम्मान देखकर जोगी बन जाने का निर्णय करता है, अलख जगाता है, परंतु वहाँ से रामबली राय उसे पकड़ कर लाता है और उसके गुरु की कुटिया में आग लगवा देता है। हमारे देश का बंधुआ मजदूर हमेशा अपने मालिक का गुलाम और कर्जदार रहा है। वह कभी भी मालिक को छोड़कर जाने को स्वतंत्र नहीं है। शिबू काका साँप पकड़ते हैं, लोग उनका सम्मान करते हैं। वह समझ जाता है कि लोग भय से भी सम्मान करते हैं। तब वह शिबू काका का चेला बन जाना चाहता है। शिबू काका उसे बार-बार फटकारते हैं परंतु जब एक बार उसे दायित्व देते हैं तो काका के चार साँप मर जाते हैं। बोदा प्रण लेकर शिबू काका को बदले में पाँच विषधर पकड़ कर देता है। शिबू काका उस दिन से मान जाते हैं कि तू बोदा नहीं योद्धा है और उसे अपना शिष्य स्वीकार करते हैं। रामबली राय के पुचकारने पर वह उसे डाँट देता है।

इस प्रकार एक बंधुआ मजदूर अपने दृढ़ साहस और प्रतिज्ञा के बल पर सफल सपेरा बनकर समाज में मान-सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ब्लैक होल (कहानी संग्रह)

ब्लैक होल

यह संजीव के सातवें कहानी संग्रह की प्रथम कहानी है जिसका प्रकाशन दिशा प्रकाशन द्वारा 1997 में हुआ। यह एक मध्यवर्गय परिवार की बढ़ती हुई आकांक्षाएँ, इच्छाएँ और भौतिकतावादी सुख-सुविधाओं के पीछे अंधी दौड़ की कथा है। आज काल के अभिभावक अपने सारे आकांक्षाओं-इच्छाओं का बोझ अपने पुत्र पर लादकर उन्हें घोड़ा रेस के दौड़ में हाँक देते हैं। प्रत्येक अभिभावक अपने बच्चे को अव्वल ही देखना चाहता है। बच्चे की इच्छा और रुचि का ध्यान नहीं रखा जाता है जिसके दुष्परिणाम हमारे सामने आ रहे हैं। कहानी में अलका जी ऐसी ही पात्रा हैं जिनके पति एक ईमानदार क्लर्क हैं और उनकी इस आमदनी में पड़ोसियों की तरह फ्रिज, वासिंग मशीन, कुलर, गीजर संभव नहीं है। वह हमेशा अपनी स्थिति की तुलना अपने धनी पड़ोसियों से करती हैं जो आम भारतीय महिलाओं का स्वभाव है। पति से ये सारी इच्छाएँ जब पूर्ण नहीं होती तो बच्चे की शिक्षा के ऊपर पड़ जाती हैं। माँ के डर से बेटा 'अंक' हमेशा रटता रहता है। वह मिसेज ग्रोवल की नकल करके अपने बेटे का टेस्ट लेती हैं जबकि उस विषय से वे स्वयं इत्तेफाक नहीं रखती हैं। वे सोचती हैं कि जमाना *'फास्ट फूड-फास्ट लाइफ'* और *'यूज एँड थ्रो'* का हो गया है। पति परेशान है कि उसकी पत्नी उसके और उसके पुत्र के पीछे पड़ी है जिसका परिणाम अंततः भयावह निकलता है। फिजिक्स की परीक्षा में एक न्यूमेरिकल हल न कर पाने के कारण अंक आत्महत्या कर लेता है।

अतः यह कहानी पूर्णतः यथार्थवादी है। आज भी आये दिन हमें इलेक्ट्रॉनिक या प्रिंट मीडिया में यह देखने-सुनने को मिल जाता है कि पढ़ाई के बोझ से हैरान होकर छात्र ने खुदकुशी कर ली। लेखक यह बताना चाहते हैं कि शब्द 'सर्वोत्तम' में तम भी आता है जिसका अर्थ है अंधकार। अतः हमें इस भौतिकतावादी दौड़ से बचने का प्रयास करना चाहिए।

कन्फेशन

सत्तर के दशक में कोलियरी उद्योग के निजीकरण तथा राष्ट्रीयकरण के विभिन्न मुद्दों पर बहस तथा भ्रष्टाचार, युनियन, शोषण एवं नैतिकता आदि इस कहानी के केंद्र बिंदु रहे हैं।

पल्लवी के पिता साहा मजदूर युनियन के नेता हैं। 1971 में केलूडाँगा कोलियरी के राष्ट्रीयकरण होने के साथ ही लूट और अनैतिकता का दौर चालू हो जाता है। बहुत से पुराने मजदूरों का नाम लिस्ट से काट दिये जाते हैं और उनके स्थान पर चमचों-बेलचों को कोयिलरी में नौकरी दे दी जाती है। मजदूर नेता साहा इसका विरोध करते हैं तो उनकी हत्या कर दी जाती है। लड़ाई की कमान उनकी पुत्री पल्लवी साहा अपने हाथों में लेती है परंतु बहुत ही चालाकी के साथ दूसरे युनियन नेता शीतल चटर्जी पल्लवी को प्रेम विवाह में बाँधकर उसे बच्चा पैदा करने की मशीन में तब्दील कर देते हैं। और खुद मजदूर नेता से एम. एल.ए., एम. पी. तक पहुँचते हैं। अखबारों में यह छपता है कि शीतल चटर्जी जैसे ब्राह्मण ने एक दलित बेसहारा लड़की से शादी करके कन्फेश किया था। पल्लवी शाहा को यह समझने में काफी देर हो जाती है कि उसके पिता को एक झटके में काटा गया था और उसे धीरे-धीरे जबह करके। अब वह दोबारा उठकर मजदूरों के हक में खड़ी हो जाती है। वह कहती है –"राष्ट्रीयकरण की आड़ में इस अघोषित निजीकरण की लड़ाई इस घोषित निजीकरण से शुरू हो गई है। हमारी लड़ाई इस घोषित और अघोषित दोनों तरह से निजीकरणों के विरुद्ध जब तक नहीं होगी, राष्ट्रीयकरण का कोई अर्थ नहीं रह जाता?"[53] वह मजदूरों के सामने अपनी गलती स्वीकार करके कन्फेश करती है –"कम से कम खुद को मैं कसूरवार मानती हूँ ...और आज खुले मन से यह स्वीकार करती हूँ कि जब तक लूट, लिप्सा और परजीवियों का उच्छेद नहीं होता, सब बेकार है, सब कुछ!"[54] वह मजदूरों को जागृत करती है कि जिस कारखाने का राष्ट्रीयकरण किया गया था सरकार अब उसका निजीकरण करना चाहती है। कोलियरी के अंदर राष्ट्रीय संपत्ति को बचाने के लिए लूट-खसोट का राज बंद करना होगा। उसे यह विश्वास है कि जागरुक मजदूर की कौम फिर से आंदोलन के माध्यम से खड़ी हो जायेगी।

---

53. *संजीव, 'कन्फेशन', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण :2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 277*

54. *वही, पृष्ठ संख्या – 277*

खोज (कहानी संग्रह)

मानपत्र

यह कहानी संजीव की आठवीं कहानी संग्रह **'खोज'** से लिया गया है जो दिशा प्रकाशन, दिल्ली, से 2000 में प्रकाशित हुआ। एक कलाकार अपनी सफलता के लिए किस प्रकार कल-बल-छल का प्रयोग करता है, किस प्रकार वह स्त्री को अपनी सफलता की सीढ़ी के रूप में उपयोग करता है, व्यावसायिकता ने उसे कितना स्वार्थी, धूर्त्त और अवसरवादी बना दिया है इत्यादि इस कहानी के केंद्र बिंदु हैं। कहानी की नायिका आयशा एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ की बेटी है। वह गायन कला में निपुण है। विवाह भी वह दीपंकर नामक संगीतकार से करती है जो उसके पिता का ही शिष्य है। एक बार कलकत्ते के आयोजक जिद करके दीपंकर और वीणा (आयशा) का संयुक्त कार्यक्रम रखते हैं जिसमें वीणा की ही चर्चा अधिक होती है। दीपंकर के पुरुष अहं को ठेस लगती है और वीणा अपने पति की प्रतिष्ठा को बढ़ावा देने के लिए खुद के अंदर के कलाकार का गला घोंट देती है। परंतु दीपंकर पत्नी के त्याग, निष्ठा, बलिदान को दरकिनार करके पर स्त्री से संबंध स्थापित करता है। उसकी हवस एक स्त्री तक सीमित नहीं रह जाती है। इसी पीड़ा में डूबी वीणा अपना दर्द बयां करती हुई एक मानपत्र अपने पति को लिखती है जो मूलतः अभियोग पत्र की तरह दिखता है।

परंतु इसी के विरुद्ध कला जो वीणा की ही बेटी है परंपरागत पतिव्रता, पतिभक्ति की धारणा को धत्ता बताती है और नवसंस्कारों से पुष्पित आधुनिक नारी की तरह जीवन व्यतीत करना चाहती है। वह अपने माँ के वैवाहिक और पतिव्रता जिंदगी की घुटन को दिन-रात देखती है। तभी तो सामाजिक व्यवस्था और विवाह प्रथा को वह ढकोसला समझती है –"वह विवाह प्रथा, जो किसी को बीहड़ और बंजर बना दे उसे मैं जूती की नोक पर रखती हूँ, थूकती हूँ महानता के उन चोंचलों पर, कला क नाम पर चलाये जा रहे तमाम ढकोसलों पर। आय हेट ! आय हेट ! ! आय हेट आल सच हीनियस हिपोक्रेशीज, दीज मेल एँड फिमेल शोवेनिवम्स !"[55]

---

55. संजीव, 'मानपत्र', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण :2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 428

सामाजिक सुरक्षा और ऊँचे-नीचे पाँव पड़ने जैसे मुद्दे पर वह फुँकार उठती है –"सूनो माँ मै अपनी एँटिटी से किसी भी खुदगर्ज को खिलवाड़ करने नहीं दूँगी – चाहे वह माँ हो, बाप हो, पति हो, संतान हो या एक्स, वाई, जेड गैर कोई!"[56]

इस कहानी में एक ओर अपने पति की सफलता के लिए अपने अरमानों का गला घोट देने वाली परंपरागत भारतीय नारी है तो दूसरी ओर अपने एँटिटी से किसी भी प्रकार का समझौता न करने वाली आधुनिक नारी।

पूत-पूत ! पूत-पूत!!

भारतीय ग्रामीण व्यवस्था की सच्ची दास्तान है यह कहानी। जातियों, वर्गों, वर्णों में बँटा समाज, अशिक्षा, बेरोजगारी, दरिद्रता से पीड़ित समाज, आपसी झगड़े-झमेले, वाद-विवादों में उलझा समाज आज राजनीतिक अखाड़े में अपनी संस्कृति और मूल्यों से दूर भटक गया है। राजनीतिक पार्टियों ने गाँव में अपनी जड़ें इस प्रकार फैलायी हैं कि आज गाँव का व्यक्ति-व्यक्ति किसी न किसी राजनीतिक दल से संबंधित है। राजनेता इन राजनीतिक गुटों को आपस में भिड़वाकर, हिंसा और हत्याएँ करवाकर गाँव के माहौल को अशांत कर अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेकते हैं। मानवता और भाईचारे का गाँव से पलायन हो रहा है। यही कारण है कि रोजगार के लिए शहरों में बसे ग्रामीण भी अब गाँव वापस लौटने में हिचकिचा रहे हैं।

प्रस्तुत कहानी एक नक्सल संगठन (मुक्ति सेना) और एक जातीय निजी सेना (वीर सेना) के संघर्ष को आधार बनाकर लिखी गई है। वीर सेना सामंतों तथा ऊँची जातियों की सेना है। कहानी का प्रमुख पात्र विश्वमोहन एक अखबार **'दिवस प्रभाव'** में पत्रकार है और उस अखबार में उसके लेख भी छपते हैं। कहानी में मजदूरी बढ़ाने के नाम पर सरकार द्वारा गरीबों को पट्टे पर दी गई जमीनों को सवर्णों द्वारा पुनः कब्जियाने और उन खेतों में लगे फसलों को दलितों द्वारा काटने के नाम पर युद्ध का माहौल है। संजीव ने छोटी से छोटी जानकारी को

---

56. संजीव, 'मानपत्र', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण :2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 428

भी तार्किकता के आधार पर स्पष्ट किया है। वीर सेना और मुक्ति सेना के बीच होने वाले युद्धों के कारण कई हत्याएँ और आगजनी घटती हैं। तब कथाकार इस हिंसा लीला को बंद करवाना चाहता है –"हत्तियारों को चाहिए कि वे मारे गए लोगों की जगह खुद को रखकर एक बार विचार कर लें कि सारा भरम मिट जाए।"[57]

निष्कर्ष : साहित्य के 'व्यक्तिवादी लेखन' में *'व्यक्तिनिष्ठ दृष्टि'* होने से उसमें *'व्यक्तिक तथ्य'* अधिक होते हैं जबकि *'समाजवादी लेखन'* में *'सामाजिक तथ्य'* की प्रधानता होती है। इन सामाजिक तथ्यों को समाजशास्त्र के माध्यम से ही भली-भाँति समझा जा सकता है। कहानी का संबंध सीधे-सीधे समाज से है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक की कहानियों में सामाजिकता के विविध आयामों को परिलक्षित किया जा सकता है। कहानीकार समाज से बहुत गहराई से जुड़ा रहता है और यदि उसकी संवेदना और लेखकीय दृष्टि का सामाजिक परिस्थितियों से मेलबंधन हो जाता है तो एक सफल रचना का निर्माण हो जाता है। संजीव की कहानियाँ सामाजिक, राजनीतिक सोद्देश्यता की कहानियाँ हैं। समकालीन कहानी दौर की अधिकांशतः ज्वलंत समस्याओं को समेटे, जनता की पीड़ा, दमन, अवहेलना, अन्याय से मुक्ति की कामना लिए इनकी कहानियाँ अँधेरे में राह दिखलाती हैं। वे शोषित-पीड़ित जनता के अंदर आशा का संचार करती हैं। सामाजिक विसंगतियाँ, पुलिसतंत्र, प्रशासन, सांप्रदायिकता, बालविवाह के दुष्परिणाम, नक्सलवादी, कल-कारखानों के श्रमिक, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, महामारी, सत्य की राह से भटका समाज, खानाबदोश, नट, बाजीगर, नेता, पहाड़ी जीवन, बेरोजगारी, मछुआरे आदि सभी संजीव की कलम की हद में हैं। वे इन सारी समकालीन समस्याओं का समाजशास्त्रीय विमर्श प्रस्तुत करते हैं।

'तीस साल का सफ़रनामा' कहानी संग्रह में संजीव ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के तीस साल के समाज की सामाजिक व्यवस्था का नग्नरूप प्रस्तुत किया है। इनकी सबसे चर्चित एवं

---

57. संजीव, 'पूत-पूत! पूत-पूत!!', संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, संस्करण :2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 103

पुरस्कृत कहानी **'अपराध'** इस संग्रह की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। नक्सलवादी आंदोलन को केंद्र में रखकर लिखी गई यह कहानी नक्सलियों को अपराधी नहीं अपितु बुद्धिजीवी करार देती है। संजीव प्रस्तुत कहानी में पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्याय-व्यवस्था, सामाजिक-प्रशासनिक व्यवस्था और पुलिस तंत्र को कटघरे में खड़ा करते हैं। **'चाकरी'** का नायक, **'बाग़ी'** का लेखक, **'प्रतिद्वंद्वी'** का मुन्ना, **'क़िस्सा एक बीमा कम्पनी की एजेंसी का'** का प्रसाद आदि उच्च शिक्षित बेरोजगार पात्रों में व्यवस्था के प्रति आक्रोश है। तीस साल के सफ़रनामा का सुरजा किसान से मजदूर बन जाता है जबकि नम्बरदार किसान से महाजन। इसके अतिरिक्त कारखाने में काम करने वाले मजदूरों की समस्या, ट्यूशन का मकड़जाल और आदिवासी शोषण भी संग्रह की कहानियों में रेखांकित है। पात्रानुकूल भाषा एवं प्रसंगानुकूल परिवेश का प्रयोग है। अतः अपनी पहली ही कहानी संग्रह से वे सामाजिक सरोकारों से संलग्न दिखते हैं।

'आप यहाँ हैं' कहानी संग्रह की अधिकांशतः कहानियाँ स्त्री केंद्रित हैं। **'जसी-बहू', 'कठपुतली', 'धनुष टंकार', 'पुत्री माटी' और 'आप यहाँ हैं'** जैसी कहानियों में स्त्रियों की पीड़ा, यातना, शोषण, उपेक्षा, यौन शोषण के साथ-साथ इनके विरोध का स्वर भी है। जो इन्हें अलग महत्व प्रदान कराता है। **'जसी-बहू'** कहानी में उच्चवर्ग के सितई पंडित द्वारा गरीब-दलित जसी-बहू के बलात्कार का यथार्थ चित्रण है। **'कठपुतली'** में कल्याणी दी सेठ की रखैल है। **'धनुष टंकार'** में मुंशी कारखाने में सुरसती से जबरदस्ती करता है। **'पुत्री माटी'** कहानी में जमींदारी समाप्त हो जाने पर जमींदार की पुत्री शिखा अर्थ के अभाव में रिसेप्शनिस्ट की आड़ में मालदार पार्टियों को खुश करने को बाध्य है तो **'आप यहाँ हैं'** कहानी में व्यभिचारी वर्मा नौकरानी हिंदिया का बलात्कार करता है। इसके अतिरिक्त **'प्याज के छिलके'** वर्ग संघर्ष तथा **'धावक'** एक संवेदनशील, ईमानदार, व्यक्ति की त्रासदी दर्शाता है। इन्होंने आदिवासियों की समस्या, भ्रष्ट व्यवस्था, ट्रैफिक जाम तथा अर्थाभाव में पिसते मध्यवर्गीय परिवार को कथ्य बनाया है। भाषा पात्रानुकूल तथा प्रभावात्मक है। निःसंदेह यह कहानी संग्रह कथा-साहित्य में एक अलग स्थान रखती है।

'भूमिका और अन्य कहानियाँ' संग्रह की प्रत्येक कहानी से आशा की किरण फूटती

है। संजीव की कहानियों में ग्राम अपने नग्न यथार्थ रूप में उभरा है। **'महामारी'** कहानी में भूख, गरीबी, बेरोजगारी, गंदगी, अशिक्षा सबसे बड़ी महामारी है। जब मनुष्य झाड़-फूँक से बाहर निकलकर अस्पताल की राह लेगा, बिल्ली की खेढ़ी की जगह अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए कर्म और शिक्षा पर ध्यान देगा, यह महामारी स्वयं समाप्त हो जाएगी।

'लांग साइट' कहानी में भ्रष्ट नेता, मंत्री, पूँजीपति, अधिकारी, कर्मचारी ऐश कर रहे हैं तथा ईमानदार मॉब-लिंचिंग का शिकार हो रहे हैं। **'अन्तराल'** कहानी में बाल-विवाह के दुष्परिणाम को रेखांकित करते हुए विवाह का डोर माता-पिता के हाथ से निकालकर युवा पीढ़ी की हाथ में देना चाहते हैं, विशेषकर स्त्रियों को। इसके अतिरिक्त सामाजिक जातिप्रथा, सांप्रदायिकता, गुण्डा संस्कृति, सत्य के मार्ग से भटका युवा समाज, प्रतिभा संपन्न बेरोजगार, अन्याय-अत्याचार, शोषण आदि सब विषयों पर संजीव की कलम चली है। कथाकार हमें आश्वस्त करता है कि एक-न-एक दिन नशा अवश्य फटेगा और हमारे दुखों का अंत होगा।

'दुनिया की सबसे हसीन औरत' – समाज में फैले हुए प्रभावशाली, ताकतवर और क्रूर लोगों की बेइमानी, बेशर्मी और निहितार्थ के खिलाफ आवाज मुखर करती है संग्रह की प्रत्येक कहानी। **'घर चलो दुलारीबाई!'** और **'दो बीघे ज़मीन'** में भूमि समस्या है। पहले में जमीन के लिए जीवित दुलारीबाई को अदालत में मृत घोषित कर दिया जाता है तो दूसरे में दो बीघे ज़मीन के लिए भगत को भतीजे, बहुएँ, नाती और उनकी अपनी बेटी उनका जीना मुहाल कर देती है। **'बाढ़'** कहानी में जमीन-जायदाद के लालच में तिरबेनी काका का परिवार उन्हें ब्रह्मचारी घोषित कर उनकी जमीने हड़प लेता है। **'ऑपरेशन जोनाकी'** में प्रतिभावान युवकों द्वारा नक्सलपंथ चुनना और शासकीय हिंसा द्वारा उनकी हत्या को कथाकार तत्कालिक त्रासदी मानता है। **'शिनाख़्त'** कहानी में पुलिसिया आतंक है तो **'नेता'** कहानी में मजदूरों के लिए झूठी सहानुभूति और आश्वासन। **'वापसी'** में फौजी बर्बरता तथा **'पिशाच'** में कुटिल पुरोहित तथा मगरूर सामंत कथा के केंद्र में हैं। **'चुनौती'** में विकास के नाम पर मजदूरों का शोषण है। **'दुनिया की सबसे हसीन औरत'** में सौंदर्य की परिभाषा उसके रंग, रूप, उम्र, नयन, नक्श से नहीं बल्कि आंतरिक है।

'प्रेत-मुक्ति' कहानी संग्रह में औपन्यासिक शिल्प की कहानियाँ हैं। सामंती अत्याचार और पूँजीवादी शोषण के खिलाफ निम्नवर्गीय पात्रों का संघर्ष है। **'प्रेत-मुक्ति'** कहानी मेहनतकश वनवासियों पर खूँखार भूस्वामी की बर्बरता और अत्याचार तथा उसके प्रतिरोध की दास्तान है। **'मैं चोर हूँ, मुझ पर थूको'** कहानी में कहानीकार गंदी बस्ती में रहने वाले निम्नवर्गीय सिलतोड़ी करने वाले अपराधी गिरोहों के स्थान पर उन्हें इस अपराध के लिए विवश करने वाले पुलिस और रेलवे के लोगों को असली अपराधी मानते हैं। 'मक्तल' कहानी एक क्लर्की जीवन की आशाओं, आकांक्षाओं, टूटते-बिखरते सपने एवं लाचारियों की दास्तान है। **'तिरबेनी का तड़बन्ना'** में वर्गभेद, आर्थिक विषमता और शोषण के खिलाफ संपूर्ण क्रांति का सपना है। कथ्य-शिल्प की दृष्टि से भी कहानियाँ अलग महत्व रखती हैं।

'प्रेरणास्त्रोत और अन्य कहानियाँ' – संग्रह की कहानियों को गौतम सान्याल संजीव के कथायात्रा का एक नया मोड़ मानते हैं। इसमें अधिकाशंत: कहानियाँ साहित्यकार, चित्रकार, अभिनेत्री, फिल्मकार आदि को आधार बनाकर लिखी गई हैं। **'प्रेरणास्त्रोत'** कहानी में लेखक के कल्पना और यथार्थ के संयोग से सृजित पात्र जंगली बहू वास्तविक जीवन में हरिजन और महिला कोटे से पंचायत चुनाव जीतकर हर अन्याय का प्रतिकार करती है। **'सागर सीमान्त'** के माध्यम से एक प्रेम गाथा लिखने का प्रयास है। जिसमें नसीबन सिर्फ स्त्री रह जाती है और बाप, पति और बेटा उसके लिए रिश्ते नहीं अपितु पुरुष साबित होते हैं। साक्षात्कार शैली में लिखी गई कहानी **'सन्तुलन'** में अभिनेत्री जोहराबाई का पारिवारिक संघर्ष और पति प्रेम चित्रित हुआ है। **'कुछ तो होना चाहिए न!'** कहानी सामाजिक यथार्थ के गहरे अन्वेषण की आवश्यकता पर लिखी गई है। **'क़दर'** एक बंधुआ मजदूर को बोदा से योद्धा बनाने की कहानी है। इसके अतिरिक्त **'नकाब', 'आहट'** और **'कन्फ्यूजन'** कहानी में क्रमशः समाजिक विषमता, उपभोक्तावादी संस्कृति तथा फैंटासी और यथार्थ का सुंदर परिपाक हुआ है।

'ब्लैक होल' संग्रह की कहानियों में गंभीर एवं जटिल विषयों पर गहरी एवं वैचारिक लड़ाई लड़ी गई है। 'ब्लैक होल' कहानी मध्यवर्गीय आकांक्षाएँ, इच्छाएँ और भौतिकवादी सुख-सुविधाओं के प्रति अंधी दौड़ और मुँह के बल गिरने की कथा है। **'नस्ल'** कहानी में

मध्यवर्गीय प्रतिभा को बनिया का व्यापार हड़प लेता है। **'कन्फेशन'** कहानी में राष्ट्रीयकरण और निजीकरण की पेचीदिगियाँ, मजदूर आंदोलन में पुरुषवादी वर्चस्व का यथार्थ अंकित हुआ है। मूल्यों के ह्रास का 'काउंटडाउन' शुरू हो गया है। **'हिमरेखा'** कहानी में कथाकार ने पहाड़ी इलाके में फैले रूढ़िवाद, बहुपति प्रथा तथा मैदानी इलाके के समाज में फैले यौन उच्चश्रृंखलताओं को एक साथ कटघरे में खड़ा किया है। **'फैसला'** में तीन तलाक के नाम पर स्त्री शोषण है। **'वांछित-अवांछित', 'धुंध और धुंध', 'सूखी नदी के घाट पर'**, थोड़ी फीकी कहानियाँ हैं। **'दुश्मन', 'खिंचाव'** बस ठीकठाक कहानियाँ हैं। 'आरोहण' का भूपसिंह एक सशक्त किरदार है।

'खोज' कहानी संग्रह के अंतर्गत **–'पूत-पूत! पूत-पूत!!'** और '**अवसाद'** तक आते-आते संजीव का नक्सलवाद से मोहभंग हो जाता है। 'मानपत्र' कहानी में स्वार्थी, धूर्त्त और अवसरवादी कलाकार दीपंकर कल-बल-छल का प्रयोग कर अपनी सफलता की सीढ़ी अपनी स्त्री को बनाता है। कहानी में एक ओर अपने पति की सफलता के लिए अपने अरमानों का गला घोंटने वाली भारतीय नारी है, तो दूसरी ओर अपने एँटीटी से किसी भी प्रकार का समझौता न करने वाली आधुनिक नारी। **'खोज'** में प्रतिभाशाली सगुनिए पूँजी के गुलाम हैं। **'लिटरेचर'** और **'हलफनामा'** जैसी कहानियों में बाजार और पूँजी प्रतिभावान व्यक्तियों और मेहनती श्रमिकों को प्रलोभन के जाल में फँसाते हैं। **'मदद'** में सांप्रदायिक मानसिकता उजागर हुई है। **'जीवन के पार'** में आदिवासी प्रेमी गीतों का सुंदर परिपाक है।

'गुफा का आदमी' संग्रह के **'ज्वार'** नामक कहानी में विवादास्पद बाबरी ढाँचा गिराये जाने का दुष्परिणाम बांग्लादेश में क्या हुआ रेखांकित है। योद्धा कहानी में जातीय संकीर्णता से मुक्ति की छटपटाहट है। **'दस्तूर'** में समाप्त हो रहे सामंती मूल्यों को ढोने की झूठी शान है।

'झूठी है तेतरी दादी' – कहानी 'झूठी है तेतरी दादी' के अंदर पर्दा-प्रथा, जाति और वर्ण की जकड़बंदी समाज में यथावत बनी हुई है, जिसका शिकार तेतरी जैसी निश्छल-निरक्षर महिलाएँ हो रही हैं। **'लाज-लिहाज'** कहानी में जाति-व्यवस्था, लिंग भेद, नारी निर्यातन और गाँव में राज करती खाप पंचायत पर कड़ा प्रहार है। **'हत्यारे'** कहानी में मुहल्ले का युवक ही

प्रदीप के पिता के घर में बेरोजगारी के कारण डाका डालता है।

अतः इनकी कहानियाँ पाठकों के अंदर वैज्ञानिक दृष्टिकोण और चेतना का संचार करती हैं। इनकी कहानियों का फलक अत्यंत व्यापक है। उसे किसी निश्चित ढाँचे में बांधकर नहीं देखा जा सकता है। उसका फैलाव ग्राम, नगर, कस्बा, अंचल, समतल, पहाड़, समुद्र, स्पेश आदि तक है। संजीव के प्रारंभिक कहानियों की स्त्री पात्र कुछ कमजोर दिखलाई पड़ती हैं क्योंकि वे सिर्फ सहती हैं। परंतु परवर्ती कहानियों में वे आवाज उठाती हैं, आंदोलन करती हैं। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि संजीव हमारे अंदर आशा का संचार करते हैं कि एक न एक दिन देश के शोषित-पीड़ित जनता का नशा अवश्य फटेगा और नया सबेरा आएगा।